# कल्याण

मल्य ८ रुपये



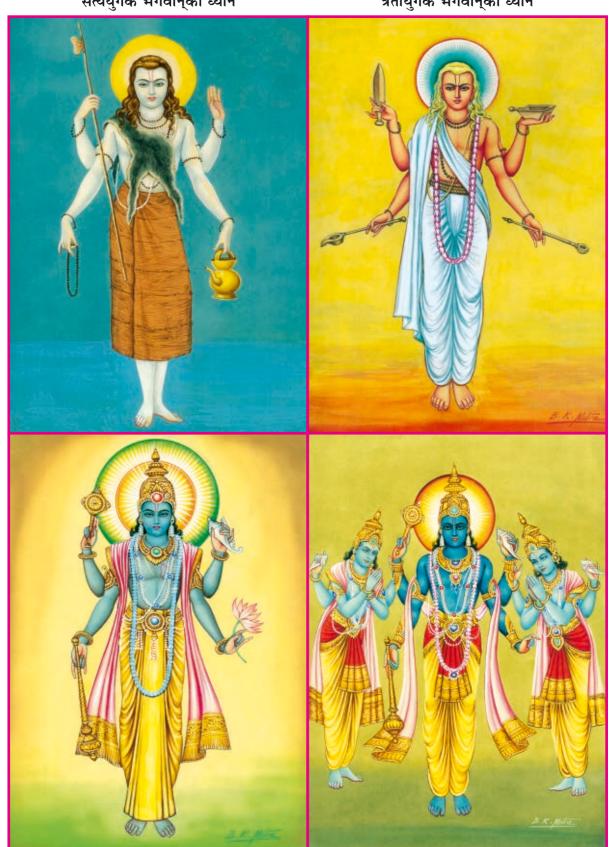
श्रीभरतजीद्वारा श्रीरामचरणपादुकाओंका पूजन



चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका स्वरूप

सत्ययुगके भगवान्का ध्यान

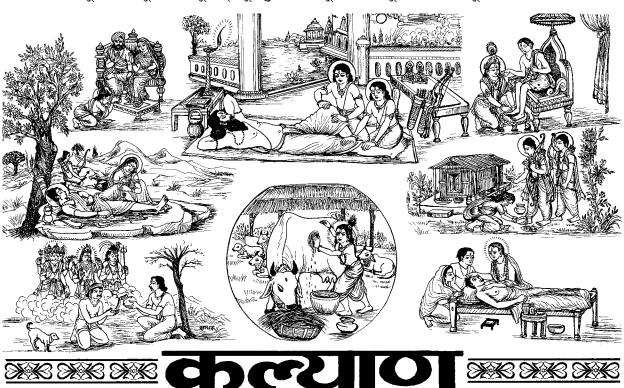
त्रेतायुगके भगवान्का ध्यान



द्वापरके भगवान्का ध्यान

कलियुगके भगवान्का ध्यान

ॐ पूर्णमदः पूर्णिमदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं शान्ता चरन्तः। तीर्णाः भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥ स्वयं

गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, अप्रैल २०१५ ई० पूर्ण संख्या १०६१

## चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका ध्यान

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जिटिलो वल्कलाम्बरः। कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्डकमण्डल्॥ सत्ययुगमें भगवान्का श्वेत वर्ण होता है, वे चार भुजाएँ, सिरपर जटा, वल्कल वस्त्र, काले मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला, दण्ड और कमण्डलु धारण करते हैं। त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः।

हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्तुक्सुवाद्युपलक्षणः॥ त्रेतायुगमें उन भगवान्का रंग लाल होता है, वे

आदि यजपात्रोंको धारण करते हैं।

चार भुजाएँ धारण करते हैं। उनके केश सुनहले होते हैं और वे वेदप्रतिपादित यज्ञके रूपमें रहकर सुक्, सुवा

द्वापरे भगवाञ्ख्यामः पीतवासा निजायुधः। श्रीवत्सादिभिरङ्केश्च लक्षणैरुपलक्षितः॥

हे राजन्! द्वापरयुगमें भगवान्का रंग साँवला होता है। वे पीताम्बर और शंख, चक्र आदि आयुध

धारण करते हैं। वक्ष:स्थलपर श्रीवत्स आदि चिह्नों और अनेक लक्षणोंसे वे पहचाने जाते हैं।

> कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्। यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

कलियुगमें काले रंगकी कान्तिसे, अंगों और उपांगों; अस्त्रों एवं पार्षदोंसे युक्त श्रीकृष्णकी श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन पुरुष यज्ञोंके द्वारा और प्रधान रूपसे नाम-कीर्तन आदिके

द्वारा आराधना करते हैं।[ श्रीमद्भागवत, एकादश स्कन्ध ]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ (संस्करण २,१५,०००) कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, अप्रैल २०१५ ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या पुष्ठ-संख्या विषय विषय ११- साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) ...... २५ १- चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका ध्यान...... ३ १२- वृद्धजनोंके प्रति युवाओंका कर्तव्य २- कल्याण...... ५ ३- सेवा, जप, ध्यान, प्रेम तथा व्याकुलता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ....... ६ १३- सबमें आत्मभाव ...... २८ ४- संसार-जय (पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, एम०ए०) ... १० १४– हमारी प्राचीन वैमानिक–कला ५- पतनोन्मुख मानव-समाजकी रक्षा कैसे हो? (श्रीदामोदरजी झा, साहित्याचार्य) ...... २९ (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी १५– एक पलके सत्संगसे प्रभुप्राप्ति श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...... १२ (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापित)...... ३२ १६- समाजकी सेवा [कहानी] (श्री 'चक्र') ...... ३६ ६- उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (डॉ॰ श्रीशिवेन्द्रप्रसादजी गर्ग, 'सुमन') ...... १६ १७- साधनोपयोगी पत्र..... ४१ ७- दूसरोंकी निन्दा किसी हालतमें न करो ...... १८ १८- आवरणचित्र-परिचय.....४२ १९- व्रतोत्सव पर्व [ ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व] ......४३ ८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ..... १९ २०- कृपानुभूति ..... ४४ ९- 'भावे हि विद्यते देव: ' २१- पढो, समझो और करो ......४५ २२- मनन करने योग्य.....४८ (दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती) ...... २२ २३- पूर्ण गोहत्या-बन्दीकी दिशामें महाराष्ट्रका एक कदम १०- सन्त-उद्बोधन (—राधेश्याम खेमका) .......५० (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ...... २४ चित्र-सूची २- चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका स्वरूप ...... मुख-पृष्ठ ३ - क्षमाशील संत ...... (इकरंगा) ...... १६ ५- मन्थरा और कैकेयी ...... ( " )...... २५ जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ पंचवर्षीय शुल्क एकवर्षीय शुल्क जगत्पते । गौरीपति विराट् रमापते ॥ जय जय अजिल्द ₹ १००० अजिल्द ₹ २०० सजिल्द ₹ २२० सजिल्द ₹ ११०० वार्षिक US\$ 45 (₹2700) विदेशमें Air Mail) Us Cheque Collection सजिल्द शुल्क पंचवर्षीय US\$ 225 (₹ 13500) Charges 6\$ Extra संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक — राधेश्याम खेमका. सहसम्पादक — डॉ॰ प्रेमप्रकाश लक्कड केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित website: www.gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org © (0551) 2334721 सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें। Online सदस्यता-शुल्क भुगतानहेतु gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

संख्या ४ ] कल्याण याद रखों — तुमसे कोई बुरा बर्ताव करे तो उसके उसे उदारताके साथ बाँटो। इससे जगत्का बहुत-सा साथ भी अच्छा बर्ताव करो और ऐसा करके अभिमान दु:ख दूर हो जायगा। न करो। दूसरेकी भलाईमें तुम जितना ही अपने अहंकार याद रखो - जिसके बर्तावमें प्रेमयुक्त सहानुभूति और जागतिक स्वार्थको भूलोगे, उतना ही अधिक नहीं है, वह मनुष्य जगत्में भाररूप है और जिसके तुम्हारा वास्तविक हित होगा। हृदयमें स्वार्थ-युक्त द्वेष है, वह तो जगत्के लिये सबके साथ सहानुभूति और नम्रतासे युक्त मित्रताका अभिशापरूप है। हृदयमें विशुद्ध प्रेमको जगाओ, उसे बर्ताव करो। संसारमें अधिक मनुष्य ऐसे ही मिलेंगे, बढ़ाओ और सब ओर उसका प्रवाह बहा दो। तुमको जिनकी कठिनाइयाँ, जिनके कष्ट तुम्हारी कल्पनासे अलौकिक सुख-शान्ति मिलेगी और तुम्हारे निमित्तसे जगत्में भी सुख-शान्तिका प्रवाह बहने लगेगा। वस्तुत: कहीं अधिक हैं। तुम इस बातको समझ लो और किसीके साथ भी अनादर और द्वेषका व्यवहार न करके प्रेम ईश्वरका स्वरूप है। विशेष प्रेमका व्यवहार करो। आप जो कुछ बोयेंगे, वही अनन्तगुना होकर वापस मिलेगा। बीजके अनुसार ही फल होते हैं। यह बात याद रखनेकी है कि भगवान्के राज्यमें भलाईके बीज बोनेसे भलाईके फलोंसे तमाम खेत भलाईका फल बुराई कभी हो नहीं सकता। इसी तरह बुराईका फल भलाई नहीं होता। तुम्हारे साथ यदि कोई हरा-भरा हो जायगा। वह आपको भी मिलेगा और बुरा बर्ताव करता है और तुम भी यदि उसके साथ वैसा जगत् भी उसे पाकर सन्तुष्ट होगा। द्वेष और वैरसे ही बर्ताव करोगे तो इससे यही सिद्ध होगा कि तुम्हारे मनुष्य जैसे जगत्को नरक बना देता है, वैसे ही अन्दर कोई ऐसा दोष भरा है, जो यह चाहता है कि सहानुभूति और प्रेमसे उसे स्वर्गसे भी बढ़कर बना लोग तुमसे द्वेष करें और तुमको सतायें। सकता है। ऐसा न होता तो तुम अच्छा बर्ताव करते और याद रखो-जो केवल अपना ही स्वार्थ देखते उसके बदलेमें भगवान्के न्यायसे अब नहीं तो कुछ हैं और जिनका 'अपना' बहुत ही सीमित होता है, वे दिनों बाद तुम्हें अच्छा बर्ताव मिलता ही। अच्छे बड़े संकुचित मनवाले होते हैं और उनसे भला व्यवहार बर्तावके फलस्वरूप आपके हृदयमें अच्छाईका भरना नहीं हो पाता। जिनका 'अपना' विस्तृत हो गया है, जो तो अनिवार्य ही है। सारे जगत्में 'अपनेपन' का अनुभव करते हैं, वे गन्दे अच्छा बर्ताव-निश्छल प्रेमका व्यवहार करके स्वार्थके वशमें होकर जगत्का अहित नहीं कर सकते। सबमें भलाईका—प्रेमका वितरण करो। यही सच्ची सहायता उनका स्वार्थ ही परमार्थ होता है। और सच्चा आश्वासन है। आप जैसा व्यवहार करेंगे, मनुष्यमें ज्यों-ज्यों प्रेमका विस्तार होता है, त्यों-वैसा ही जगत्को देंगे और वैसा ही आप पायेंगे भी। ही-त्यों उसके 'स्व' का दायरा भी बढ़ता जाता है। सभीको प्रेमभरी मधुरता और सहानुभृतिभरी आँखोंसे बढ़ते-बढ़ते वह सारे विश्वमें छा जाता है। फिर विश्व-देखें। सुखी जीवनके लिये प्रेम ही असली खूराक है। कल्याणमें ही उसे अपना 'कल्याण' दीखता है। यही

प्रेमका शुद्ध रूप है।

'शिव'

संसार इसीकी भूखसे मर रहा है। अतएव प्रेम-वितरण

करो-अपने हृदयके प्रेमको हृदयमें ही मत छिपा रखो:

सेवा, जप, ध्यान, प्रेम तथा व्याकुलता

# (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्से प्रार्थना करके भगवान्के मिलनेके उपाय

बतलाये गये हैं। जो आदमी स्वार्थ छोड़कर सेवा करे

नहीं है। जो भजन करता है, पर उसे परिश्रम मालूम

और सेवाकी भीख माँगे, प्रार्थना करे कि 'हमें सेवा देता है तो समझना चाहिये कि भजनमें उसकी श्रद्धा

और प्रेम गौण है, उसे याद ही कम आता है। याद करनेका अवसर दो' इसमें इतना स्वार्थ नहीं है, जितना

स्वार्थ भगवान्के दर्शन माँगनेमें है। यदि कोई मुझसे कहे

कि आप भगवान्का दर्शन करवा दें तो इसमें उसका

स्वार्थ है; क्योंकि वह मुफ्तमें दर्शन करना चाहता है।

दर्शन करानेवालेने तो उसकी सेवा की। हमें किसीकी

सेवा करनेका अवसर मिले तो ऐसा अवसर देनेवाला हमारा उपकार करता है। सेवा करनेमें परिश्रम भी होता

है, इसलिये मुफ्तमें दर्शनकी अपेक्षा सेवामें निष्काम भाव

ज्यादा है। इन भावोंमें तत्त्व भरा हुआ है। लोगोंके मनमें

अन्धकार छाया हुआ है। उन्हें दीखता है कि यह बहुत

भला आदमी है, भगवानुके दर्शनके लिये कह रहा है।

ठीक है, वह तो भगवान्के दर्शनके लिये कह रहा है

और दूसरा सेवा माँग रहा है। यदि कोई मुझसे आकर

कहता है कि 'आप भगवान्का दर्शन करवा दें' उसकी

अपेक्षा सेवाका काम चाहनेवाला मुझे ज्यादा अच्छा

दोष आते हैं-एक तो स्वार्थका दोष आता है; क्योंकि

उसे भगवान्का दर्शन मुफ्तमें चाहिये और दूसरा यह

कि वह कहता है कि मुझे भगवानुका दर्शन करवा दें।

उसमें श्रद्धा ही नहीं है। भगवान्के दर्शन करना चाहता

ही नहीं। यदि कोई कहता है कि भगवान्के दर्शनकी

इच्छा करनी और सेवा करनेकी इच्छा करनी-इन

दोनोंमें भगवान्की इच्छा करनी बड़ी चीज है तो उसने

सेवाके तत्त्वको जाना ही नहीं; क्योंकि वह भगवान्के

दर्शन बिना भजन किये मुफ्तमें करना चाहता है। जो

भजनको बेगार समझते हैं, भजन करनेको परिश्रम

इसमें विचार करनेकी बात है-पहलेवालेमें दो

लगता है।

भजन करते ही नहीं हैं, उनमें वास्तवमें आस्तिकता ही

शास्त्रोंमें निष्काम सेवासे और निष्काम भावसे

\_Hinduism Discord Sérver https://dsc.gg/dharma\_|\_MADE WITH LOVE BY Áyinash/Sha समझते 'हैं, उनकी भगवान्का मिलना केंट्रिन हैं। मिले या न मिले । उसकी भगवान्में रुचि, प्रीति और

भगवानुके भजनमें श्रद्धा और रुचि न रहनेके कारण जो

और श्रद्धा सामान्य है।

आनेपर वह करने भी लग जाता है, किंतु उसमें उसे

कोई परिश्रम नहीं मालूम देता, विशेष आनन्द भी नहीं

आता। वह समझता है कि थोड़े ही भजनसे भगवान्

मिल जायँ तो बहुत अच्छी बात है। उसका वह भजन महत्त्वपूर्ण नहीं है; क्योंकि ईश्वरमें उसकी प्रीति, रुचि

चाहता। यदि भूल जाता है और भूलनेपर उसे पश्चाताप

होता है तो ऐसी स्थितिमें समझना चाहिये कि उसकी

भजनमें श्रद्धा और रुचि कुछ विशेष है। भजन

करनेवालेको भजन करते समय शान्ति और प्रसन्नता

मालूम देती है और वह यह चाहता है कि मेरा भजन

सदा बना रहे, फिर भी कभी-कभी भूल हो जाती है।

इस अवस्थामें भजनमें और भगवान्में प्रीति, रुचि और

श्रद्धा मुख्य है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि उससे

भजन छूटता ही नहीं और छूटनेसे बड़ी भारी व्याकुलता

हो जाती है। वह भूलको बर्दाश्त नहीं कर सकता और

बहुत ही दु:खित-सा हो जाता है। इस दशामें उसकी

भगवान्में श्रद्धा, रुचि और प्रीति विशेष समझी जाती है

अथवा यह कह सकते हैं कि तीव्र समझी जाती है या

अनन्यकी तरह समझी जाती है। इससे भी जो बढ़कर

है, वहाँ तो भूल हो ही नहीं सकती। वह तो भगवान्से

भी बढ़कर भगवान्के भजन और ध्यानको समझता है।

एक तरफ भगवान् मिलना चाहते हैं और दूसरी तरफ

भजन-ध्यान छोड़ना पड़ता है तो उसका यह भाव रहता

है कि 'मैं भजन-ध्यान नहीं छोड़ सकता, भगवान् चाहे

जिसे भजन प्रिय लगता है, वह उसे छोडना नहीं

िभाग ८९

संख्या ४ ] सेवा, जप, ध्यान, प्र	प्रेम तथा व्याकुलता ७
\$	**************************************
श्रद्धा तीव्रतर है। इससे भी बढ़कर वह साधक है, जो	प्रेम-श्रद्धा इत्यादि गौण है। फिर भी भगवान्का भजन-
भगवान्के जप और ध्यानको छोड़ नहीं सकता, प्राणोंका	ध्यान और भगवान्के नामका जप तो भगवान्की
त्याग कर सकता है। भजन-ध्यानका वियोग असह्य है,	प्राप्ति करवानेकी सामर्थ्य रखता है। इसलिये भगवान्में
पर प्राणोंको त्यागना सह्य है। जब उस साधकसे एक	प्रेम तथा भगवान्की प्राप्तिके उद्देश्यसे भजन, ध्यान,
क्षण भी ढील बर्दाश्त नहीं हो पाती तो उसी समय	जप करना चाहिये। 'भजन' शब्द व्यापक अर्थमें है।
भगवान्को प्रकट होना पड़ता है; क्योंकि उसकी रुचि,	कीर्तनको तथा नाम-जपको भजन कहते हैं। हमलोग
प्रीति और श्रद्धा तीव्रतम है। जिस समय भजन-ध्यानके	हरिके गुण गाया करते हैं, जिसे 'हरियश' कहते हैं,
विषयमें तीव्रतम इच्छा हो जाती है या उसे तीव्रतम स्मृति	उसे भी भजन कहते हैं।
होने लग जाती है फिर भगवान् उससे मिले बिना नहीं	जपके लिये भी युक्ति है। प्रथम तो हमलोग युक्ति
रह सकते, क्षणमें मिल सकते हैं। परमात्माकी प्राप्तिके	जानते ही नहीं। युक्तिसे बढ़कर भाव है, जिससे जप
लिये सबसे बढ़कर अन्तिम क्षण वही है, जिस क्षणमें	अपने-आप ही महत्त्वपूर्ण होने लग जाता है। एक तो
इतनी व्याकुलता हो जाय, प्राण जानेकी तैयारी हो जाय।	हम जपको महत्त्वपूर्ण बनाते हैं और एक जप अपने-
भगवान्की विस्मृति तो हो ही नहीं सकती। भगवान्के	आप स्वयं महत्त्वपूर्ण बन जाता है। अपने लोगोंकी
विस्मरणमें परम व्याकुलता ही नहीं, बल्कि वह भगवान्के	जपको महत्त्वपूर्ण बनानेकी क्रिया बहुत ही शिथिल है।
भजन, चिन्तन, स्मरण और ध्यानके बिना जी ही नहीं	हमलोग जप उच्चारण करके करते हैं, पर उससे वह
सकता; क्योंकि भजन, ध्यान तथा स्मरण ही उसका	जप बढ़िया है, जिसमें मन-ही-मन करते हैं, दूसरेको
जीवन है, प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। जैसे श्वास	सुनायी नहीं देता, किंतु ओठ हिलते दीखते हैं। हमारी
स्वाभाविक चलता रहे तो कष्ट नहीं होता, श्वासको	जिह्वा भी हिलती है, ओठ भी हिलते हैं और बहुत धीरे-
रोकनेमें कष्ट होता है। इसी प्रकार श्वासकी तरह	धीरे हमें सुनायी देता है, किंतु दूसरे आदिमयोंको सुनायी
स्वाभाविक ही भगवान्का भजन-ध्यान होता है, करना	नहीं देता। हमारे बहुत नजदीकमें यदि कोई कान
नहीं पड़ता। वह भगवान्के भजन-ध्यानको भगवान्से	लगाकर देखे तो शायद उसे सुनायी दे भी सकता है,
भी बढ़कर समझता है, उसके लिये भगवान् रुक नहीं	उसे 'उपांशु जप' कहते हैं। उससे भी वह जप श्रेष्ठ
सकते, क्षणमात्रमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं।	है, जिसमें ओठ भी नहीं हिलते, भीतर-ही-भीतर केवल
हमलोग प्रायः भगवान्के नामका जप करते हैं,	जिह्वासे ही जप होता रहता है और उससे भी वह श्रेष्ठ
भगवान्के स्वरूपका ध्यान करते हैं, वह महत्त्वपूर्ण	है, जो जप हमारे कण्ठसे होता है, प्राणोंसे, श्वाससे
नहीं है। ध्यान तो प्राय: होता ही नहीं, किंतु भगवान्के	सम्बन्ध रखता है। श्वासके आवागमनद्वारा जपका
नामका जप बेगारकी तरह करते हैं, किसी-किसीको	अभ्यास जिह्वाके जपके अभ्याससे भी और ज्यादा
तो परिश्रम-सा प्रतीत होता है और कोई तो जैसे	महत्त्वपूर्ण है। इससे भी बढ़कर मानसिक जप है।
औषधका सेवन रुचिसे नहीं करता, पर बाध्य होकर	मानसिक जपके भी कई प्रकार हैं। एक तो जब
औषधका सेवन करना पड़ता है, उसी प्रकार बाध्य	हम सो जाते हैं तो खूब गौर करनेपर कानमें घड़ीके
होकर भगवान्का भजन करता है। वास्तवमें वह	खटकेके समान तथा नाड़ीकी चालके अनुसार वह शब्द
भजन ही नहीं है, जप ही नहीं है। हम यदि अपने	सुनायी देता है और उसके साथ हम नामका सम्बन्ध
जन्म-मरणकी बीमारीको मिटाने तथा पापोंका नाश	जोड़ते हैं यानी 'राम' या 'शिव' और जो अपने इष्टदेव
करनेके लिये भगवानुका जप-भजन करते हैं तो भगवानुमें	हैं, उनके नामका इसके साथ सम्बन्ध जोड़ देते हैं। अब

भाग ८९ \* जितनी बार शब्द सुनता है, उतनी ही बार उसके साथ नामके साथ-साथ नामीको भी याद कर लेता है। जैसे भगवान्के नामका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। आगे जाकर भगवान् रामके साकार रूपका उपासक भगवान् रामके उसे भगवन्नामकी ध्वनि प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगती है। मुखारविन्दके ऊपर, गालके ऊपर, मस्तकके ऊपर, ललाटके ऊपर, कानोंके पास—चारों तरफ सब जगह इस प्रकार जप मनसे ही सम्बन्ध रखता है। मन यदि नहीं रहेगा तो नाम सुनेगा ही नहीं। इसी प्रकार नाड़ीके भगवान्का नाम लिखकर भगवान् रामको साथ-साथ देखता रहता है, नामका जप भी मनसे करता रहता है द्वारा जप होता है। योगशास्त्रमें बतलाया गया है कि सुषुम्ना नाड़ी हृदयसे लेकर मस्तकतक है। हृदयमें और भगवान्के मुखारविन्दको भी देखता रहता है। इस एकाग्र होकर ध्यान करनेसे वह नाड़ी चलती दीखती है। प्रकार ये दोनों बातें एक साथ हो रही हैं। जप भी हो मस्तक, भुकुटि तथा कण्ठमें भी विशेष ध्यान देनेसे वह रहा है, ध्यान भी हो रहा है। जैसे भगवान् रामके नाड़ी दिखायी देती है। उसकी चाल तेज करनेसे वह मुखारविन्दपर चन्दनसे 'राम-राम' अंकित है, उसे वह स्पष्टरूपसे दीखने लग जाती है। यह भी एक प्रकारसे स्वयं याद कर रहा है, मनसे स्मरण कर रहा है और मानसिक जप है। जैसे कोई 'राम'-नामका उपासक है, मुखारविन्दको भी देख रहा है। उसका यह भाव है कि भगवान् नेत्र ढकते हैं, उनसे भी भगवान्के नामका वह 'रा' और 'म' को दीवालपर लिखकर अपने मनसे उसे बार-बार पढ़ रहा है, 'रा' और 'म' को मनसे देख उच्चारण होता है और खोलते तथा बन्द करते समय भी भगवान्के नामका उच्चारण होता है, मानो भगवान्की रहा है, भगवान्के नामका स्मरण कर रहा है, मनसे नामका चिन्तन कर रहा है तो यह भी मानसिक जप है। आँखें भी 'राम-राम' का उच्चारण कर रही हैं। जैसे जो अपने उपास्य देव हैं—जैसे कोई भगवान् रामका ही मुख खिल गया तो उस समय 'रा' का उच्चारण हुआ ध्यान करता है, रामके नामका ही जप करता है, भगवान् और मुख बन्द हुआ तो उसमेंसे 'म' का उच्चारण हुआ रामके ललाटपर या भगवान् रामके मुकुटपर चन्दनसे यानी मुख भी 'राम-राम' उच्चारण कर रहा है। भगवान् भगवान्का नाम लिखकर उसे देखता रहता है। यह और बोलते हैं या हँसते हैं तो भगवान्के नामका उच्चारण हो रहा है। जैसे हँसनेके समय मुख खिल गया तो मानो भी बढकर है। 'रा' उच्चारण हुआ और वापस बन्द करके मुसकरा रहे जो निराकारका उपासक है, साकारका उपासक नहीं है, उसके द्वारा भगवान्के निराकार-वाचक नामों— हैं तो 'म' उच्चारण हुआ। इस प्रकार जप और ध्यान जैसे 'ॐ, तत्, सत्' 'अनन्त', 'राम' आदिका स्मरण दोनों साथ हो रहे हैं। यदि कोई निराकारका उपासक है तो वह इस प्रकार समझे—अपने शरीरमें प्रत्येक नाड़ी मनके संकल्पसे होता है। जैसे मनमें बहुत-सी बातें याद आती रहती हैं, उनका संकल्प होता है, उन्हें वाणीसे स्वाभाविक ही चल रही है, उनके साथ जपका सम्बन्ध थोड़े ही बोल सकता है। श्वासोंसे थोड़े ही इस प्रकारसे जोड़ देना चाहिये। समझना चाहिये कि उससे स्वाभाविक कहता है कि मनमें इसकी स्मृति होती है, चिन्तन होता ही जप हो रहा है और इसका मनसे अनुभव हो रहा है, याद आती है। इस तरह भगवान्के नामकी जो बार-है। यह भी मानसिक जप है। देह में जितने रोम हैं, उनमें प्रसन्नता भर गयी है, बार स्मृति होती रहती है, यह मानसिक स्मरण है। इस प्रकार मानसिक स्मरण करके जो न किसीसे कहता है, इसलिये वे खिल गये हैं, मानो रोम-रोमसे राम-नामका न किसीको जनाता है, न संकेत करता है, न यह बात उच्चारण हो रहा है, चित्तमें प्रसन्नता हो रही है। दिखलाता है, गुप्त-भावसे करता है, यह और भी उत्तम भगवान्की कृपासे मानो रोम-रोमसे भगवान्के नामका

जप हो रहा है। रोमांच होता है, रोम खुलते हैं तो ऐसी

है। इस प्रकार गुप्त भावसे नाम-स्मरण करता हुआ

संख्या ४] सेवा, जप, ध्यान, रे क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	
	भी बड़ी उच्चकोटिकी इच्छा है, यह इच्छा कोई दोष
मनमें ऐसा प्रतीत होना उच्चकोटिका मानसिक जप है।	नहीं है। आगे जाकर यह इच्छा भी नहीं रहती। जब
ऐसा जप करके गुप्त रखना ज्यादा महत्त्वकी चीज है।	इस प्रकारसे होने ही लग जाता है तब उसमें भूल होती
इसमें रुचि और प्रीति दोनों साथ लगी हुई हैं। श्रद्धा और	ही नहीं, नित्य-निरन्तर ही होने लग जाता है, फिर यह
विश्वास—ये दोनों इसमें हैं ही। क्योंकि बिना श्रद्धा और	इच्छा क्यों रहे ? इच्छा अभावमें होती है या भयमें होती
विश्वासके ऐसा होना भी सम्भव नहीं है। बिना प्रेमके	है कि यह छूट न जाय। वहाँ भय भी नहीं, कोई अभाव
भी सम्भव नहीं है। अत: यहाँ यह कहना भी नहीं बनता	भी नहीं, अत: इच्छा होनेका भी कोई कारण नहीं। जब
कि अगर श्रद्धा और प्रेमसे किया जाय तो दर्जा और भी	भगवान् सम्मुख खड़े हैं फिर भगवान्के मिलनेकी इच्छा
ऊँचा हो सकता है। ऐसा श्रद्धा और प्रेमसे ही होता है।	नहीं रहती; क्योंकि जब भगवान् मिल ही रहे हैं फिर
जब श्रद्धा, प्रेम, रुचि और प्रीतिसे ऐसी स्थिति हो जाती	मिलनेकी इच्छा रहनेका कोई कारण ही नहीं, बल्कि
है तब उसे इतनी प्रसन्नता और शान्ति होती है कि	उस जगह यह शंका रहती है कि कहीं भगवान् अदृश्य
जिसकी कोई सीमा नहीं। यह प्रसन्नता और शान्ति श्रद्धा	न हो जायँ, छिप न जायँ। तब यह इच्छा होती है कि
और प्रेमके कारण ही होती है। यह उच्चकोटिका जप	ऐसे ही बने रहें। जिसका यह भाव है, जिन भगवान्के
है। इसमें भी जबतक उसमें कर्तापनका भाव है तबतक	नाम-स्मरणसे प्रत्यक्षमें ऐसा आनन्द हो रहा है यह
कमी है, उससे भी वह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है जिस कर्तामें	उससे कैसे छूट सकता है, छूटनेका कोई कारण ही
कर्तापनका भाव नहीं, क्योंकि उससे स्वाभाविक ही	नहीं। भगवान् अपनेको दर्शन दे रहे हैं, देते-देते
होता है। जो स्वाभाविक ही होता है, वह ज्यादा	अन्तर्धान हो सकते हैं, वह हमारे वशकी बात नहीं, किंतु
महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकारका जप जब स्वाभाविक ही	हमसे जो जप हो रहा है, वह उसी तरह नहीं छूट सकता
नित्य-निरन्तर होने लग जाता है, एक क्षण भी उसमें	जैसे श्वास बन्द होनेपर हम जी नहीं सकते। यह तो
भूल नहीं होती, एकतार जप होने लग जाता है तो जपके	हमारा जीवन है, हमारे प्राणोंसे भी बढ़कर है। जिनको
प्रभावसे ही भगवान् प्रकट हो जाते हैं; क्योंकि उसके	भगवान्का भजन प्राणोंसे भी बढ़कर प्रतीत होता है वह
जपके साथ-साथ रूपको भी स्मृति है ही। चाहे	प्राणोंका तो त्याग कर सकता है किंतु भगवान्के नाम-
साकारका उपासक हो या निराकारका, जो इस जपमें	स्मरणका त्याग नहीं कर सकता। इसी प्रकार विरहकी
दिलचस्पी लेता है, रसास्वाद लेता है, आनन्दका अनुभव	व्याकुलतामें भी ऐसी बात हुआ करती है। विरहकी
करता है, वह पुरुष भगवान्के दर्शनोंकी अपेक्षा इस	व्याकुलता यानी भगवान्के वियोगकी व्याकुलतामें ध्यान
प्रेमपूर्वक भगवान्के स्वतः होनेवाले नाम-जपको ज्यादा	प्रधान है। पहली पद्धतिमें जप भी है, ध्यान भी है और
महत्त्वपूर्ण समझता है और वह यही चाहता है कि ऐसा	विरहमें भी जप एवं ध्यान दोनों है, पर पहलेमें तो जप
जप निरन्तर बना रहे।	होते-होते ध्यान होता है, इसलिये नाम-जपकी प्रधानता
चाहना क्यों होती है? निरन्तरतामें कमी होनेसे।	है, लेकिन विरहमें ध्यानके बलसे भगवान्का नाम भी
जब निरन्तरतामें कमी नहीं रहती तो यह चाहना भी कैसे	याद रहता है। नामका जप करते–करते ध्यान होने लग
बने, वह तो हो ही रहा है। जबतक वह कर्ता है तबतक	जाय तो ध्यान होनेके बाद विरहकी व्याकुलता भी हो
उसमें चाहना होती है; क्योंकि वह मनसे करता है।	सकती है। सबके लिये अलग-अलग तरीका है, एक
अर्थात् जबतक कर्तापना है तबतक इच्छा है। यह इच्छा	ही बात नहीं है।[क्रमशः]

िभाग ८९ संसार-जय (पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, एम०ए०) अन्दर जो कामना है, बाहर वही संसार है— सच्ची विजय है! कामनाकी जो मूर्ति बाहर प्रकट है, वही संसार है। जो भीष्मदेव हमारे आदर्श हैं। इस संसार-जयी महापुरुषने कामनापर विजय पा सकते हैं, भोगेच्छाका त्याग कर मृत्युको भी जीत लिया था। ईसामसीहका क्रॉससे बिंध सकते हैं, स्वयं त्यागकर दूसरोंको त्यागकी शिक्षा दे जाना अवश्य ही प्रशंसाकी बात है। परंतु भीष्मदेव सकते हैं, वे ही संसार-जयी पुरुष हैं। हजारों तेज धारवाले बाणोंसे बिंधे होनेपर भी अविचलित भीष्मदेव संसार-जयी पुरुष थे। 'पिता धर्म है, थे। इच्छामृत्यु होनेपर भी हजारों तीरोंको शरीरमें बिंधे पिता स्वर्ग है, पिता ही परम तप है, पिताको सन्तुष्ट रखकर ही उन्होंने धर्मका उपदेश किया था और करनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं।' शास्त्रने यही शिक्षा आनन्दके साथ उत्तरायणतक जीवनको रखा था। इस दी है, परंतु आज ऐसे कितने मनुष्य हैं, जो इस शिक्षाके ऐतिहासिक सत्यको असम्भव मानकर इसे कहानी अनुसार कार्य करते हैं? भगवान्-भगवान् बहुत लोग कहकर उड़ा देनेसे काम नहीं चलता। आज इसपर करते हैं, परंतु उनमें बहुतेरे पितृद्रोही, मातृद्रोही और विश्वास नहीं होता, इसमें हमारी मृढ बुद्धि ही कारण गुरुद्रोही होते हैं, यदि भगवान्को साथ रखकर कहीं घर है। जब पहले-पहल रेल-तार चले थे तब ग्रामीण करना पड़ता तो वे भगवदुद्रोही भी हो जाते! ऐसे लोग किसानोंको उनपर विश्वास नहीं हुआ था। आज हम भगवानुको कहाँ पायेंगे ? ये क्या साधन करेंगे ? चरित्रवान् चरित्रबल, धर्मबल, तपोबल आदिके सम्बन्धमें सर्वथा या चरित्रवती हुए बिना क्या भगवान् मिलते हैं? जो अज्ञानी हैं। निरक्षर, ग्रामीण किसानकी अपेक्षा भी हमारी मनुष्य अपने पिता-माताके लिये भी अपना जरा-सा सुख अवस्था गयी-गुजरी है। इसीसे हमें विश्वास नहीं होता, नहीं त्याग सकता—भोगको नहीं छोड सकता, उसमें परंतु इससे भीष्म काल्पनिक नहीं हो जाते। इसीलिये हमने कहा था कि पितामह संसार-जयी पुरुष थे।

चरित्र कहाँ है ? ऐसी प्रकृतिके मनुष्य, जो पिता-माता आदि गुरुजनोंके कड़े व्यवहारको मानकर नहीं चलते, साधनमार्गपर चलनेयोग्य नहीं हैं। इनका साधन करना दम्भ होता है। इन्हें पहले सीखना चाहिये—संसारमें तितिक्षु होना, बड़े आनन्दसे दूसरेके सुखके लिये अपनी भोगेच्छाका त्याग करना। ऐसा करनेपर फिर भगवानुके मार्गपर चलना सहज हो जायगा। संसारको जीतनेकी कला सीखे बिना भगवान्के समीप नहीं पहुँचा जाता। भीष्मदेव संसारपर विजय पा सके थे। पिताके सन्तोषके लिये उन्होंने जीवनभर स्त्रीका ग्रहण नहीं किया। पिताकी बात तो दूर—पिता जिसकी कन्यासे विवाह करना चाहते थे. उसके सामने राज्यत्याग और आजीवन स्त्रीत्यागकी प्रतिज्ञा किये बिना पिताका अभिलाष पूर्ण नहीं होगा, ऐसा समझकर भीष्मदेवने हँसते-हँसते जीवनभरके लिये कामिनी और कांचनका सर्वथा त्याग कर दिया। वे ही सच्चे संसार-जयी थे। भीष्मदेव विरक्त

तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं यस्य पूजनात्॥ यही श्रीभगवान्की महिमा है। अभिषेककी तैयारी हो गयी है। प्रात:काल राजा होंगे। बहुत दूर-दूरसे लाखों नर-नारी अभिषेकके लिये आये हैं। सब कुछ तैयार है, ऐसे समय श्रीभगवान् राज्य छोड़कर वनको चले जाते हैं—पिताके सत्यकी रक्षाके लिये! श्रीभगवान्ने पिताके

चरित्रपर विचार नहीं किया। बल्कि जिन्होंने पिताके

चरित्रपर विचार करके उसमें दोष दिखलाया, उन्हें यह

समझा दिया कि पिताका दोष ही नहीं हो सकता—

धर्ममार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः।

सर्वांगीण संसार-जयके आदर्श हैं भगवान् श्रीराम।

आजीवन स्त्रीत्यागकी प्रतिज्ञा किये बिना पिताका अभिलाष पिताका दोष देखनेसे पुत्रका पुत्रत्व ही नहीं रहता। पूर्ण नहीं होगा, ऐसा समझकर भीष्मदेवने हँसते - एताने किस प्रकारसे, किसके सामने, किस अवस्थामें जीवनभरके लिये कामिनी और कांचनका सर्वथा त्याग दानकी बात स्वीकार की थी। प्रभुके मनमें इसका विचार कर दिया। वे ही सच्चे संसार-जयी थे। भीष्मदेव विरक्त ही नहीं आया। पिता किसी भी प्रकारसे, किसी भी होकर संसारसे भागे नहीं, बल्कि विमाताके पुत्रको अवस्थामें आज्ञा क्यों न दें, उनकी आज्ञाको बिना विचार Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shark स्वयं उसके रक्षक बनकर रहे। यहाँ पालन करना चाहिय। यहाँ चरित्र है। इसकी नाम

संख्या ४] संसार-जय संसार-जय है। यही सत्यता है। पितामें दोष देखना तो दु:खकी परवा न करके प्रजाका उपकार ही करता है। असभ्यता—बर्बरता है। 'पिता भगवान् हैं, पिताका दोष श्रीभगवान्ने जनकनन्दिनीका त्याग किया। कहा जा हो ही नहीं सकता। मैं अभागा शैतानके जालमें फँसकर सकता है कि प्रजाके अज्ञानके कारण राजा ने महारानीके पिताकी बातें नहीं मानता हूँ।' जिसका हृदय इस प्रकार साथ अविचार किया। बिना ही अपराधके उसका त्याग कहता है, वह एक दिन संसार-विजयी हो सकता है! कर दिया। हम कहते हैं, यह त्याग त्याग नहीं था, यह एक बात और! वनगमनके समय पिताने प्रभुको थी प्रतिष्ठा। यही संसार-जय है। रोकना चाहा। प्रभुने विचार किया और विचार करके स्थूल देहको आँखोंसे अलग करना ही क्या त्याग है ? सूक्ष्मभावसे सीताका निरन्तर मनोराज्यमें स्थापन कर कहा—आप इस समय जो कुछ कह रहे हैं, यह स्नेह है। स्नेहमें पडकर मनुष्यको सत्यका त्याग करके असत्यका लेना उसका त्याग है या स्थापना? सीताको त्यागकर ग्रहण नहीं करना चाहिये। यह भारतके असाधारण धर्मका भगवान्ने जितना दु:ख सहा, उतना दु:ख क्या सीताको फल है। साधारण धर्म दूसरे देशोंमें है। पर असाधारण धर्म हुआ था? 'रे रे दाहिने हाथ! तूने सीताका त्याग कर तो भारतमें ही है। इस धर्मका कोई अंश यदि अन्यत्र देखा दिया था' श्रीभगवान्की इस कातरोक्तिमें त्यागकी बात है या चिरस्थापनाकी ? अश्वमेधयज्ञमें सीताकी स्वर्णमयी जाता है तो वह इस देशसे आनेकी ही सूचनामात्र है। इस देशके जीवोंका कर्मसूत्रमें बँधकर वासनावश अन्य देशोंमें मूर्तिको वामभागमें स्थापन करके यह यज्ञ सम्पादन जन्म हो गया है। इसीसे पूर्वसंस्कारवश ये किसी अंशमें करना त्याग है या स्थापना? जगत्के हितके लिये जो स्थूलका त्याग करके सूक्ष्मकी स्थापना कर सकते हैं, वे इस देशका व्यवहार कर बैठते हैं। ही यथार्थ संसार-जयी हैं और जो संसार-जयी है, वही श्रीभगवान्ने एक और भी कठिन लीला की थी। उन्होंने कलंकशुन्या, निरपराधा सहधर्मिणीको भी त्याग पुरुष संयमी है। दिया था। कंचनका त्याग ठीक है, कामिनीका ग्रहण न श्रीभगवान्ने स्वयं आचरण करके जो आदर्श करना भी ठीक है। परंतु ग्रहण करके, पूर्णरूपसे उसे दिखलाया, वैसा और कहाँ है ? ऐसा संसार-जय और पवित्र जानकर और रमणीयताकी साक्षात् मूर्ति देखकर कौन दिखा सकता है? आओ-आओ, इस आदर्शका भी 'स्वामिगतप्राणा', 'समचित्त-स्पन्दनवती' का परित्याग अनुकरण करनेके लिये हम प्राणप्रण करें। पिता, माता, कर देना और कहीं नहीं है! श्रीभगवान्ने देवीका त्याग गुरु, स्वजनोंके लिये हम संसार-जय करें। कर्तव्यके क्यों किया? राजाका कर्तव्य पालन करनेके लिये? यह लिये आदर्शको अक्षुण्ण रखकर मनुष्य बनें! कर्तव्यके सामने अपनी कामनाकी चरितार्थता? कर्तव्य प्रजारंजन है। प्रजाके लिये सारे सुखोंका विसर्जन कर देना ही राजधर्म है। आश्रितके लिये अपने सुखकी प्रेमके सामने कामका कदर्य कार्य? तुम्हारे जरा-से कामनाका त्याग ही पूर्णमात्रामें संसार-जय है। सुख-त्यागसे यदि परिवारका मंगल होता है, समाजका प्रजा अज्ञानी हो सकती है-आश्रितजन मूर्ख हो कल्याण होता है, जातिका, चरित्रका और धर्मका महत्त्व सकते हैं-परंतु राजा यदि अज्ञानी मूर्ख आश्रितोंको क्षमा प्रतिष्ठित होता है तब क्या स्वार्थरूप पशुत्वका विसर्जन करके उनके दोषोंको न सुधार सके तो राजधर्म कैसे रह कर देना उचित नहीं है ? अपना आहार, निद्रा, भय और सकता है ? इस प्रकारके कार्योंसे राजाको महान् क्लेश मैथुन ही तो पशुत्व है। स्वयं पशुत्वको जय करके— होगा। अपने प्रधान स्वार्थका त्याग करना पड़ेगा। परंतु दूसरेको पशुत्वके जय करनेकी शिक्षा देना क्या कर्तव्य राजा यदि ऐसा नहीं करे तो उसकी प्रजाका, उसके नहीं है? पशुत्वको त्यागकर देवत्वके ग्रहणके लिये आश्रितोंका अपने अज्ञानवश और भी मन मैला होगा— प्राणोंकी बाजी लगा देना ही क्या बुद्धिमान् पुरुषके उनका अज्ञान और भी बढ़ जायगा और उनके अज्ञानसे जीवनका उद्देश्य नहीं होना चाहिये? पशुत्व-जयकी राज्य पापसे भर जायगा। इसलिये राजा अपने किसी भी चेष्टाको क्या संसार-जय नहीं कहा जा सकता?

पतनोन्मुख मानव-समाजकी रक्षा कैसे हो ? ( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) पाप और पुण्यकी सीधी-सी परिभाषा यह है कि समझते हैं, नहीं तो—नहीं करते। अर्थात् अपने लाभके जिस भावना या क्रियासे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका लिये ही दूसरोंका हित करते हैं। अहित होता हो, वह पाप है और जिस भावना या (५) जो केवल अपना ही हित देखते हैं, दूसरोंके क्रियासे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका हित होता हो, हितका विचार ही नहीं करते। वह पुण्य है। जिससे दूसरोंका हित नहीं होता, उससे (६) जो अपने हितके लिये दूसरोंके हितकी अपना हित कदापि नहीं होगा और जिससे दूसरोंका हित जान-बूझकर उपेक्षा करते हैं। (७) जो अपने हितके लिये दूसरोंका अहित

कहा है—

होता है, उससे अपना कभी अहित नहीं होगा-यह सिद्धान्त निश्चयरूपसे मान लेना चाहिये। हमारा वास्तविक हित दूसरोंके हितमें ही समाया है। जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि हम दूसरोंका अहित करके या दूसरोंके हितकी उपेक्षा करके अपना हित करते हैं या कर लेंगे, वे वस्तुत: बड़े मूर्ख हैं। वे अपना हित कभी कर ही नहीं पाते। यह मान्यता ही भ्रम है कि दूसरोंके हितकी उपेक्षा

अहितमें अपना हित और दूसरोंके दु:खमें अपना सुख समझते हैं। ऐसे मनुष्य ही असूर-मानव हैं, जिनका जीवन दूसरोंकी बुराईमें ही लगा रहता है। वे दूसरोंकी बुराई करने जाकर अपनी ही बुराई करते हैं। संसारमें साधारणतया नौ प्रकारके मनुष्य होते हैं-(१) जो दूसरोंके हितमें ही अपना हित समझते हैं, अतएव जीवनभर प्रत्येक क्रिया दूसरोंके हितके लिये

या उनका अहित करनेसे हमारा हित हो जायगा।

यथार्थमें वे मनुष्य बड़े ही अभागे हैं, जो दूसरोंके

ही करते हैं। अपना नुकसान करके भी दूसरोंको लाभ पहुँचाया करते हैं। (२) जो दूसरोंके हितको प्रमुख मानते हैं और अपने हितको गौण, अत: जहाँ दूसरोंका हित होता हो,

नहीं।

वहाँ अपने हितकी चिन्ता छोड देते हैं। (३) जो दूसरोंका हित चाहते हैं—करते हैं, परंतु अपना नुकसान सहकर या अपने हितकी चिन्ता छोड़कर

सोचते हैं और करनेमें नहीं हिचकते। (८) जो अपनेको बचाकर दूसरोंका अहित ही करना चाहते हैं और दिन-रात उसीमें लगे रहते हैं। (९) जो अपना अहित करके भी दूसरोंका अहित करनेमें लगे रहते हैं। इन नौमें प्रथम सर्वश्रेष्ठ हैं और

भाग ८९

नवम सबसे नीच—अधम। प्रथम वस्तुत: दूसरोंको पर मानते ही नहीं। वे तो सबको अपना स्वरूप ही मानकर सबके सुख-दु:खमें स्वयं सुख-दु:खका अनुभव करते हैं, उनका 'स्व' अखिल जगत्के प्राणियोंमें प्रसरित होकर पवित्र हो जाता है। ऐसे ही लोगोंके लिये श्रीभगवान्ने भगवद्गीतामें

> आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ (६।३२) 'अर्जुन! जो अपने ही समान सम्पूर्ण प्राणियोंमें

समदृष्टि रखता है और सबके सुख या दु:खको भी

समतासे देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।'

वस्तुत: उसके अनुभवमें सर्वत्र एक आत्मा ही रह जाता है। वह किसी भी वर्ग, वर्ण, जाति, पद, देश, धन, सम्प्रदाय आदिके भेदसे आत्मामें भेद नहीं मानता। भेदोंमें रहते हुए ही वह अभेदभावसे सबका वैसे ही हित

चाहता और करता है, जैसे मनुष्य अपने मस्तक, हाथ,

(४) जो दूसरोंका हित तो चाहते हैं और करते पैर और नीचेकी इन्द्रियों आदिके व्यवहारमें भेद मानता भी हैं, परंतु वहीं चाहते-करते हैं, जहाँ अपना भी लाभ तथा बरतता हुआ भी उनमें समान आत्मभाव रखता और

संख्या ४] पतनोन्मुख मानव-	प्रमाजकी रक्षा कैसे हो ?
**************************************	. * * * * * * * * * * * * * * * * * * *
उनका सहज ही हित चाहता तथा करता है। ऐसे सबमें	ं नि:स्वार्थ प्रेमी, सहज ही करुणहृदय, ममता और
'स्व' की अनुभूति करनेवालेका 'स्वार्थ' पवित्र हो जात	। अहंकारसे रहित, सुख-दु:खकी प्राप्तिमें सम, क्षमाशील
है; क्योंकि सबका स्वार्थ ही उसका स्वार्थ बन जाता है	, (अपराध करनेवालेका मंगल चाहनेवाला), निरन्तर
सबका हित ही उसका हित बन जाता है और सबक	। लाभ-हानिकी प्रत्येक स्थितिमें सन्तुष्ट, मन-इन्द्रिय-
सुख ही उसका सुख हो जाता है। वह केवल एव	ज्ञ शरीरको वशमें रखनेवाला दृढ़निश्चयी पुरुष है, वह
छोटे-से समाजमें ही नहीं, समस्त विश्वमें आत्मीयताक	। मुझमें (भगवान्में) मन-बुद्धिको अर्पण कर चुका हुआ
अनुभव करता हुआ कभी किसीका अहित तो करता र्ह	ो मेरा भक्त मुझे बड़ा प्रिय है।'
नहीं, किसीको दु:ख तो पहुँचाता ही नहीं, उनके हितर्क	ऐसा भक्त अपने इन्द्रिय-सुख या अपने किसी
या सुखकी अवहेलना या उपेक्षा भी नहीं कर सकता	। पृथक् सुखके लिये कैसे प्रयत्न करेगा? उसे तो इसकी
वह निरन्तर सहज ही 'सर्वभूतहित' में रत रहता है	। कामना ही नहीं होगी। सबका सुख ही उसका सुख
भगवान्ने ज्ञानी साधकके लिये कहा है—	होगा।
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।	वस्तुत: विश्वमें जब इस प्रकारके आदर्श ज्ञानी या
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं धुवम्॥	भक्तोंका समाज बनेगा, तभी यहाँ यथार्थ सुख-शान्ति
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।	होगी। आजका समाज तो सचमुच बहुत गिर गया है
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥	या गिर रहा है, जिसमें ऐसे व्यक्ति भरे हैं, जो इन्द्रियोंके
(गीता १२।३-४)	) गुलाम हैं, मनके दास हैं, दिन-रात मौज-शौक-
'जो पुरुष अपनी सारी इन्द्रियोंको भलीभाँति	ा विलासमें रहना चाहते हैं, अपने इन्द्रिय-सुखके लिये
नियन्त्रणमें रखते हैं, समस्त प्राणियोंके हितमें रत रहते	ो दूसरोंके दु:ख या अहितकी परवा ही नहीं करते,
हैं और सबमें समबुद्धि रखते हैं, वे अचिन्त्य, सर्वव्यापी	, अपनेको ही सुखी बनानेकी धुनमें सदा लगे रहते हैं और
अनिर्देश्य, कूटस्थ, नित्य, अचल, अव्यक्त, अक्षर ब्रह्मकं	। इसके लिये दूसरोंका प्रत्यक्ष अहित करते रहते हैं। इस
उपासना करते हुए मुझको (भगवान्को) प्राप्त होते हैं।	' स्थितिको मिटानेके लिये भगवान्के आदर्श वाक्योंके
जो सर्वत्र एक परम तत्त्वका दर्शन करते हैं, व	। अनुसार एक नवीन विश्वका निर्माण होना चाहिये,
इन्द्रियसुखकी इच्छा कैसे करेंगे, उनकी इन्द्रियाँ सहज	। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति उपर्युक्त ज्ञानी या भक्तके आदर्श
ही भोग-सुखोंसे हटी रहेंगी। सबमें सहज ही उनकी	ो जीवनसे सम्पन्न हो। यह तभी होगा, जब मानव
समबुद्धि होगी और सबका हित ही उनका सहज कम	र्व दूसरोंको ऐसा बनानेकी चिन्ता न करके पहले स्वयं ऐसा
होगा।	बनना चाहेगा और इसके लिये पूरा प्रयत्न करेगा।
भक्तके लिये तो भक्तोंकी स्वरूप–व्याख्याके आरम्भगं	मंं आजका मानव दिन-रात गला फाड़कर और कलम
ही भगवान् कहते हैं—	चलाकर दूसरोंको उपदेश करता है, पद-पदपर उनकी
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।	भूलें बताकर उन्हें भूल सुधारनेका आदेश देता है, पर
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥	स्वयं न अपनी भूलोंको देखता है और न उन्हें सुधारनेका
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।	ही प्रयत्न करता है। स्वयं दिन-रात आसुरी-सम्पदाके
मर्य्यार्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥	सेवनमें लगा रहकर ही जगत्को देव बनानेकी बातें
(गीता १२।१३–१४)	
'जो समस्त प्राणियोंमें द्वेषभावसे रहित, सबक	

भाग ८९ हो रहा है-भले वह विज्ञानमें तथा अर्थपैशाचिकतामें ऊँचा और दसों जोड़े जूते—भोजनका, शयनकक्षका, टेनिसका, चढ गया हो—बल्कि अपने आदर्श मानवीय गुणोंकी— फुटबॉलका, दिनका, रातका, ऑफिसका, क्लबका, जो उसे देवता बनानेमें समर्थ हैं—अवहेलना करके पार्टीका अलग-अलग—मानो मोचीकी दुकान लगी हो दिनोंदिन असुरत्वकी ओर—पतनकी ओर जा रहा है। तो ऊँचा स्तर। जमीनपर आसनपर बैठे और हाथसे भोजन किया इसीसे उपर्युक्त नवम प्रकारके मनुष्य भी आज मानव-समाजमें उत्पन्न हो गये हैं, जो अपना नुकसान तो नीचा स्तर और टेबलपर चम्मच, छूरे, कॉॅंटेसे खाया करके भी, अपना अहित करके भी दूसरोंको नुकसान तो ऊँचा स्तर। पहुँचाने या दूसरोंका अहित करनेमें ही सुखका अनुभव शुद्धताके साथ परसा हुआ भोजन किया तो नीचा करते हैं। ऐसे नराधम जगत्का अकल्याण ही करते हैं। स्तर, दूसरोंकी जूठन खायी, एक ही जूठे चम्मचसे ले-जो लोग अपना वास्तविक हित चाहते हैं और लेकर खाया तो ऊँचा स्तर। घरमें रेडियो न रखा तो नीचा स्तर, रखा तो ऊँचा यथार्थमें अपना, देशका या विश्वका सुधार या उद्धार चाहते हैं, उनके लिये यह परम आवश्यक है कि वे स्तर । सप्ताहमें एक बार भी सिनेमा न देखा तो नीचा दूसरोंको अपना समझें और उनके हितमें ही अपना हित समझकर कार्य करें। ऐसा होनेपर जीवनमें संयम, स्तर, रोज-रोज गये तो ऊँचा स्तर। सदाचार, सेवा आदि सद्गुण अपने-आप ही आ जायँगे। पाठ-सन्ध्या-पूजा की, तिलकादि लगाया तो नीचा आजकल एक नया रोग फैला है—'जीवनके स्तर, उठते ही बिस्तरपर चाय पी, सिगरेटसे धुआँ फेंका स्तरको, रहन-सहनको ऊँचा उठाओ।' त्याग, तपस्या, और अखबार पढ़ा तो ऊँचा स्तर। संयम, सादगी, सेवा, सदाचार, मितव्ययिता आदिमें नहीं; स्त्रियाँ देशी चन्दन-कर्प्रादि पदार्थींका लेप करें, देशी तेल, इत्र लगायें, बिन्दी-सिन्द्र लगायें, मेंहदी-भोग, उच्छृङ्खलता, यथेच्छाचार, विलासिता, आरामतलबी, अनाचार, फजुलखर्ची आदिमें। इसका आदर्श है— आलताका प्रयोग करें तो नीचा स्तर, विदेशी पेस्ट-अनावश्यक आवश्यकताओंको बढाते रहो। अधिक-से-पाउडर, स्नो-क्रीम, नखराग (नेल-पालिश), अधरराग अधिक वस्तुओंका उपयोग करो, मौज-शौककी चीजें (लिपस्टिक), बालोंके लोशन, बालोंको घुँघराले बनानेवाले बरतनेकी आदत डालो, हाथ-पैरसे कामकाज न करो, थियोग्लार कोल एसिड आदिका उपयोग करें तो ऊँचा श्रम करनेमें अपमान समझो, सिनेमा-रेडियो आदिसे स्तर । आनन्द लूटो, जीवनको भोगमय या इन्द्रियोंका गुलाम इस ऊँचे स्तरके निर्माणमें मिथ्या अभिमान, फैशन, बना लो। फिर इन बढ़ी हुई आवश्यकताओंकी पूर्तिके विलासिता, बाहरी दिखावा, बेहद खर्च, समयका नाश लिये जीवनका सारा समय तथा सारी विवेक-बुद्धिको और इन्द्रियोंका दासत्व कितना बढ़ जाता है, साथ ही लगाते रहो। शारीरिक रोग भी कितने बढ़ते हैं, इसका जरा भी ध्यान गमछा पहनकर कुएँपर या नदीमें नहा आये तो न करके हमलोग आज नकली आवश्यकताओंको बढ़ाते नीचा स्तर और गुशलखानेमें टट्टीदानके बगलमें ही टबमें जाते हैं। हमारे छात्र-छात्राओंमें यह रोग बहुत तेजीसे नंगे होकर नहाये तो ऊँचा स्तर। बढ रहा है, जो देशके लिये अत्यन्त घातक है। विलासी शौच जाकर मिट्टीसे हाथ धोये तो नीचा स्तर, तथा अनावश्यक खर्च करनेवाला आदमी न समाज या लोकहितकी बात सोच सकता है, न कर सकता है। चर्बी-मिले साबुनसे हाथ धोये या न धोये तो ऊँचा स्तर। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

संख्या ४] पतनोन्मुख मानव-सम	गाजकी रक्षा कैसे हो ?
************************************	*********************************
आवश्यकताओंकी पूर्तिमें ही लग जाता है। अतएव हमें	चोर तो हैं ही, दूसरे लोगोंकी अभावपूर्तिमें बाधक
ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि हमारी इन नकली	बनकर एक नया पाप और करते हैं। देशमें करोड़ों
आवश्यकताओंका नियन्त्रण हो, फैशनकी इच्छा तथा	आदिमयोंको अंग ढकनेके लिये भी पर्याप्त कपड़े नहीं
बाहरी दिखावेका मोह छूटे और हमारा जीवन पवित्र,	हैं और कुछ लोगोंकी पेटियाँ, आलमारियाँ कपड़ोंसे
संयमपूर्ण तथा सादा-सीधा हो।	भरी रहती हैं, नये-नये फैशनके कपड़े वे खरीदते ही
विलासिता, फैशन तथा बाहरी आडम्बरमें फँसे हुए	रहते हैं। सुना है कि कोट-पैंट आदिकी सिलाईमें वे
मनुष्यकी बुद्धि तमसाच्छन्न हो जाती है, मनपरसे उसका	हजारों रुपये व्यय कर देते हैं। उनके घरोंमें इधर-उधर
नियन्त्रण उठ जाता है। वह पराये हितकी तो बात दूर	कपड़े बिखरे पड़े रहते हैं, दीमक लग जाती है, ऊनी-
रही, अपने हितकी बात भी नहीं सोच सकता। इसीसे	रेशमी कपड़ोंको कीड़े काट डालते हैं, पर परिग्रहसे
अन्याय, अधर्म, चोरी, ठगीसे धन कमाकर वह अपनी	उनका मन नहीं भरता। खानेके लिये मनुष्यको कितना
आवश्यकताओंकी पूर्तिके प्रयत्नमें लगा रहता है और	चाहिये, पर हमलोग पचासों प्रकारकी चीजें बनाकर
फैशनकी जिस किसी चीजको देखता है, उसीका संग्रह	शरीरकी आदतोंको बिगाड़ते, नये-नये रोगोंको बुलाते
करनेके लिये लालायित रहता है। ऐसे स्त्री-पुरुष सदा	तथा खाद्य पदार्थोंका विपुल संग्रह रखनेमें अपनी शान
खर्चसे तंग रहते हैं, रोते हैं, पर अपनी बुरी आदतको	समझते हैं। जहाँ करोड़ों भाई एक समय पेटभर पूरा
नहीं छोड़ते। पैसेकी बहुत छूट न होनेपर भी फैशनकी	खा नहीं पाते, वहाँ ऐसा व्यवहार क्या पाप नहीं है?
चीजोंका अनावश्यक संग्रह करना चाहते हैं और करते	करोड़ों मनुष्य टूटी झोपड़ियोंमें रहते हैं, पर एक मनुष्य
हैं। उचित बात तो यह है कि जिनके पास पैसे अधिक	दर्जनों मकानोंपर अपना नाम रखता है। ऐसा नहीं कि
हैं, उनको भी अपने लिये उतना ही खर्च करना चाहिये,	वह दर्जनों मकानोंमें एक साथ सोता-बैठता हो। हाथ
जितनेसे शरीरका तथा घरका काम सादगीके साथ	कहीं सोये, पैर कहीं सोये, सिर कहीं सोये—ऐसा नहीं
अच्छी तरह चलता रहे और शेष पैसा समाजके	होता, उसका अभिमानमात्र बढ़ता है। पर मनुष्यका
अभावग्रस्त लोगोंके अभावकी पूर्तिके द्वारा भगवान्की	मोह, उसे ममताके विस्तारमें लगाये रखता है। वह
सेवामें लगाना चाहिये। तभी धनका सदुपयोग है, तभी	अपने लिये मकान भी बनाता है तो उसमें बीसों कमरे
धनके द्वारा भगवान्की पूजा है और तभी वह अर्थ	होते हैं, यह सब अनावश्यक वस्तुओंकी आवश्यकता
अनर्थकारी न होकर मुक्तिका—भगवत्प्रीतिका साधन	तथा उनके संग्रह-परिग्रहकी प्रवृत्ति मनुष्यको दूसरोंके
बनता है। हमारे शास्त्र तो कहते हैं कि 'मनुष्यका	हितोंकी ओरसे अन्धा बना देती है और प्रकारान्तरसे
उतनेपर ही हक है, जितनेसे उसका पेट भरता है, इससे	वह मानव-समाजका अहित करनेमें ही लगा रहता है।
अधिकपर जो अपना हक मानता है, वह चोर है और	यह प्रवृत्ति समाजमें इसी प्रकार बनी रही और बढ़ती
उसे दण्ड मिलना चाहिये'—	रही तो पता नहीं, समाजकी क्या दशा होगी। समाजके
यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।	हितैषी पुरुषोंको तथा प्रत्येक समझदार पुरुषको इसपर
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥	विचार करके ऐसे अमोघ उपाय सोचने तथा करने
(श्रीमद्भा० ७।१४।८)	चाहिये, जिससे मानव-समाज इस पतनोन्मुखी प्रवृत्तिसे
जो अपने लिये ही धनका उपयोग करते हैं,	बचे तथा सबको इहलौकिक सुख-शान्तिके साथ मानव-
अपनेको धनका स्वामी मानकर अपने ही लिये अनावश्यक	जीवनके प्रधान लक्ष्य—विशुद्ध आत्मस्वरूपकी या
वस्तुओंका संग्रह-परिग्रह करते हैं, वे ईश्वरके धनके	भगवान्की प्राप्ति हो।
<b>─→</b>	<del>&gt;+</del>

#### उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ( डॉ० श्रीशिवेन्द्रप्रसादजी गर्ग, 'सुमन')

हितोपदेशकी यह नीति-संगत उक्ति बहुत ही जलमें बह रहे बिच्छूको बचानेके लिये हाथमें लेते जाते प्रेरणास्पद है कि 'उदार चित्तवालोंके लिये तो सम्पूर्ण

पृथ्वी ही कुटुम्बवत् है'— 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।'

जो लोग उदार मनवाले हैं, वे मेरे-तेरेमें नहीं पड़ते। उनका दृष्टिकोण स्वसेवाका न होकर परसेवाका होता है।

जब वृक्षोंमें फल आते हैं तब वे झुक जाया करते हैं। नदीमें

जब जल भरता है तब पानी किनारेकी ओर बढ़ता है। फल एवं नदीका ऐसा आचरण केवल परमार्थके लिये है। उदार व्यक्तिकी सम्पत्ति सबके लिये होती है-वह दूसरेको

देकर ही कुछ खाता है। वह अपने लिये संचय नहीं करता। शास्त्रोंके अनुसार जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है। शास्त्रोंके अनुसार अपनी आयका पंचमांश

अथवा दशमांश दानमें दिया जाना चाहिये। उदार व्यक्तिका अस्तित्व ही दूसरोंके कल्याणके

लिये होता है। साधु, महामानव एवं सज्जनवृन्द छायादार वृक्षकी तरह हैं, जो दूसरोंको शीतल आरामदायक छाया

प्रदान करते हैं। उनके सम्पर्कमें आनेपर जीवको केवल लाभ-ही-लाभ मिलता है। ऐसे सज्जन व्यक्तिसे किसीको भी किसी भी प्रकारकी हानिकी सम्भावना नहीं रहती।

कारनेलके अनुसार—'उदारता उच्च वंशसे आती है, दया-कृतज्ञता उसके सहायक हैं।' एक चीनी कहावतके

अनुसार—'उदार मनवाले भिन्न-भिन्न धर्मोंमें साम्य

देखते हैं, संकीर्ण मनवाले उनमें अन्तर खोजते हैं।

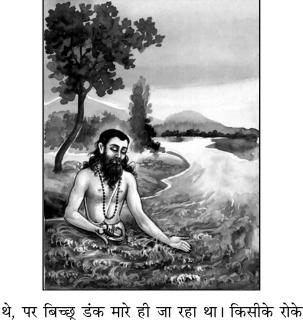
उदार व्यक्तिको दूसरेके द्वारा उसके प्रति किया गया

पहाड़-जैसा अपकर्म भी राईके बराबर एवं राई-सा सत्कार्य भी पर्वतवत् लगता है। दूसरेके प्रति उसका

राईके समान अपकर्म उसे पहाड़-सा एवं पहाड़-सा सत्कार्य राईके समान लगता है। उदार व्यक्ति अपनी

हानि सहकर भी दूसरेको लाभ पहुँचाता है। इस

सम्बन्धमें उन महात्माजीका दृष्टान्त स्मरणीय है, जो



भाग ८९

जानेपर उन्होंने कहा—'जब यह छोटा-सा जीव अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो मैं अपना स्वभाव (पररक्षाका

भाव) कैसे छोड़ सकता हूँ?' एक अन्य दृष्टान्त है, किसी सँकरे पुलपर आमने-सामनेसे दो राजाओंके रथ आ रहे थे। दोनों राजाओंके

सारथी अड़ गये कि जो राजा छोटा हो, उसीका सारथी रथको बाजू करे (एक तरफ हटाये) एवं दूसरे राजाके रथको रास्ता दे। दोनों राजाओंके सारिथयोंने अपने-

अपने राजाकी महिमाका बखान किया। दोनों ही राजा धन, राज्य एवं अन्य सभी बातोंमें बराबर निकले। अन्तमें एक सारथीने कहा—'हमारा राजा उदारको उदारतासे,

सज्जनको सज्जनतासे, लोभीको लोभसे एवं दुष्टको दुष्टतासे जीतता है।' इसके उत्तरमें दूसरे सारथीने अपने

जीतता है, लोभीको उदारतासे वशमें लाता है।' सारथी अपनी बात पूरी कर ही रहा था कि दूसरे रथवाले राजा रथसे उतरकर पहलेवाले राजाके पाँवोंमें गिर पड़े।

राजाका गुण बताया—'हमारा राजा दुष्टको भी सज्जनतासे

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् संख्या ४ ] उदारताका यही वास्तविक आधार है। जब आपके कहा—'जैसे मैं अपनी माता कुन्तीका एक पुत्र जीवित हूँ, उसी प्रकार मैं अपनी विमाताको भी पुत्रवती रखना साथ दूसरा अच्छा व्यवहार करता है तब आप उसके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं तो यह कोई बड़ी बात चाहता हूँ।' कहना न होगा कि उनका यह उत्तर ही उनके पाँचों भाइयोंको जिला सका; क्योंकि युधिष्ठिर नहीं है। बात बड़ी तो तब हो, जब हम अपने अपकारीके प्रति भी सद्व्यवहार करें, उसके प्रति द्रोहका भाव न अपनी उदारताकी परीक्षामें सफल हो गये।

ही है-

रखें। एक विद्वान्ने कहा है—'यदि किसीने तुझे बुरा कहा और तुझे बुरा लगा तो फिर दोनोंमें अन्तर ही क्या रहा? हम तो फलदाता पेड़की तरह बनें, जो पत्थरकी मार सहकर भी दूसरेको फल देता है। वैर-से-वैर कभी

शान्त नहीं होता। हिंसाका उत्तर हिंसा नहीं। किसीको

क्षमा कर देना ही सबसे बड़ा दण्ड है। किसी व्यक्तिको

क्षमा न करके वैरको बनाये रखना सर्वथा अनुचित है। किसीको क्षमा करके ही उसे आप अपना बना सकते हैं। क्षमाका अर्थ कायरता नहीं, वरन् उदारता एवं सहिष्णुता ही है।' यक्ष-प्रश्नके सन्दर्भमें जब बगुलेके रूपमें साक्षात्

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु। सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥ संसार यों तो गुण-दोषमय है ही, पर जो अच्छा

है, वह अच्छा ही रहेगा। सन्तरूपी हंस जल-रूप

विकारको छोड़कर दुग्ध-रूप गुण ग्रहण कर लेते हैं।

उदार व्यक्ति अपनी उदारताके कारण ही दूसरेको

क्षमा कर देता है। दुष्ट नीचता नहीं छोड़ता, पर अमृतकी

विशेषता यह है कि वह किसीके लिये विष नहीं

बन सकता। अमृतका गुण तो अमरत्व प्रदान करना

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार। संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥ महाभारतके अनुसार जो मनुष्य क्रोध करनेवालेपर क्रोध नहीं करता, वह अपनेको और दूसरे क्रोध करनेवालेको भी महान् भयसे बचा लेता है। ऐसा

आत्मानं च परांश्चैव त्रायते महतो भयात्। क्रुध्यन्तमप्रतिक्रुध्यन् द्वयोरेष चिकित्सकः॥ उदार मनुष्यके लिये धन, वीर पुरुषके लिये मरण,

(सहनशील) व्यक्ति दोनोंका चिकित्सक है-

समान है अर्थात् तुच्छ है-उदारस्य तृणं वित्तं शूरस्य मरणं तृणम्। विरक्तस्य तृणं भार्या निःस्पृहस्य तृणं जगत्॥

विरक्तके लिये स्त्री और नि:स्पृहके लिये संसार तृणके

विल्हण कहते हैं—'शंकरने कालकूट विषको पीकर उसे फेंका नहीं, बल्कि अपने कण्ठमें स्थान दे

रखा है; कूर्म भी अपनी पीठपर पृथ्वीको रखे हुए ही हैं, समुद्र भी दुस्सह बड़वानलको पूर्ववत् धारण किये है।

भीम-जैसे योद्धा अपने भाइयोंकी तुलनामें तुम नकुल-सहदेवको क्यों जिलाना चाहते हो?' इसपर युधिष्ठिरने

धर्मराजसे युधिष्ठिरने अपने किसी भी भाईको जीवित

करवानेके वरदानमें नकुल एवं सहदेवका प्रस्ताव किया

तो चिकत-से यक्षने कहा—'अर्जुन-जैसे बली एवं

उदार पुरुष जिसे एक बार अपना लेते हैं, उसका सर्वदा

कुर्मो बिभर्ति धरणीं खलु पृष्ठभागे। अपने साथ ले जाता है, अर्थात् मृत्युके बाद भी उसे पुन: अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्नि-प्राप्त कर लेता है। जब एक दाता (रहीम)-को आँखें झुकाये हुए दान करते देखा गया तो उससे इसका कारण मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति॥ पूछा गया। दाताने उत्तर दिया-(चौरपञ्चाशिका) उदार व्यक्ति परायी निन्दा करनेमें मूक, परदोष देनदार कोइ और है, भेजत है दिन रैन। देखनेमें अन्धे एवं चुगली सुननेमें बधिर बन जाते हैं। लोग भरम मुझपर करत, ताते नीचे नैन॥ चन्दनके वृक्षको चाहे काटा भी जाय, किंतु फिर भी वह उदारता एवं दया ये वे गुण हैं, जो दाता एवं कुल्हाड़ीके मुखको सुवासित ही करता है। उदार प्राप्तकर्ता दोनोंके लिये उत्तम परिणाम देते हैं। इसीलिये व्यक्तियोंका जीवन ही दूसरोंके लिये होता है। उदारमना व्यक्ति अपना सर्वस्व लुटाकर भी प्रसन्न रहते चन्दनको बार-बार चाहे जितना ही घिसा जाय, वह हैं। जो सुख लुटानेमें है, समर्पण करनेमें है, बाँटनेमें है, वह लूटनेमें नहीं, संचय करनेमें नहीं। अनुदारताका एक उतना ही अधिक सुगन्ध देता जाता है—'चन्दनं चारु-गन्धम्।' गन्नेको बार-बार काटने-चूसनेपर भी वह मीठा ही उत्तर है-उदारता, थप्पड़का एक ही प्रतीकार है-ही बना रहता है—'निष्पीडितोऽपि मधु ह्युद्धमतीक्षुदण्डः' उसके आगे दूसरा गाल कर देना; यही बड़ा बड़प्पन है; स्वर्णको बार-बार तपानेपर भी वह चमकता ही है-अन्यथा हिंसा, प्रतिहिंसाका एक दूषित क्रम चालू हो **'काञ्चनं कान्तवर्णम्।'** उत्तम पुरुषोंका चाहे प्राणान्त जाता है। किसीको कुछ देकर, कहीं कुछ खोकर आप ही क्यों न हो जाय, उनकी प्रकृतिमें कोई अन्तर नहीं जो कुछ प्राप्त करते हैं, निश्चय ही वह बहुत ही अमुल्य आता। मार्कण्डेयपुराणमें आता है कि श्रेष्ठ पुरुषोंका यही निधि है। अपने दुश्मनको कोई महामना ही क्षमा कर पाता लक्षण है कि उनके चित्तमें अहित करनेवालोंके प्रति भी है। काश! ऐसी सदाशयता एवं उदारता हम सबमें होती! दयाभाव बना रहता है। कर्णने अपना कवच-कुण्डल, सचमुच तेरा-मेरा करना ओछापन है-क्षुद्रता है। शिबिने अपना मांस, जीमृतवाहनने अपने प्राण और दधीचिने उदार चरितवालोंके लिये तो समूची पृथ्वी ही परिवारकी अपनी अस्थियाँ भी दान कर दीं—महात्माओंके लिये कोई तरह है—'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।' वस्तु अदेय नहीं है। कहा भी गया है— ऐसे ही सात व्यक्तियोंने इस संसारको धारण किया है, जिनमें अलोभी और दानशील अन्तिम हैं-यस्य जीवन्ति धर्मेण पुत्रा मित्राणि बान्धवाः।

परिपालन ही करते हैं।'—

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं

भाग ८९

प्रकार दान देनेवाला भी परमलोभी है; क्योंकि लोभी तो

अपना धन पृथ्वीपर ही छोड़ जाता है, जबिक दाता उसे

'अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही।'

(शिवपुराण)

# दूसरोंकी निन्दा किसी हालतमें न करो

सफलं जीवितं तस्य नात्मार्थे को हि जीवित॥

एक गूढ़ोक्ति है—'परमार्थी महास्वार्थी।' इसी

शेख सादी लड़कपनमें अपने पिताके साथ मक्का जा रहे थे। वे जिस दलके साथ जा रहे थे, उसकी प्रथा थी—

आधी रातको उठकर प्रार्थना करना। एक दिन आधी रातके समय सादी और उनके पिता उठे। प्रार्थना की, दूसरे लोगोंको सोते देख सादीने पितासे कहा—'देखिये, ये लोग कितने आलसी हैं, न उठते हैं, न प्रार्थना करते हैं।'

पिताने कड़े शब्दोंमें कहा—'अरे सादी बेटा! तू भी न उठता तो अच्छा होता, जल्दी उठकर दूसरोंकी निन्दा करनेसे

नेमांतेवरांड की क्रीडिट अर्थ Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

संख्या ४] साधकोंके प्रति—

साधकोंके प्रति—

[बिन्दुमें सिन्धु]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जो चीज जितनी श्रेष्ठ और आवश्यक होती है, श्रोता—जब भगवान् अपने हैं तो फिर हम उनसे उतनी ही वह सस्ती मिलती है। हीरा-पन्ना हमें उम्रभर बिछुड़ कैसे गये? चौरासी लाख योनियोंके चक्करमें देखनेको न मिलें तो भी हम जी सकते हैं, इसलिये वे बहुत कैसे पड़ गये? यह आप बतानेकी कृपा करें। महँगे मिलते हैं। अन्न उससे भी सस्ता मिलता है; क्योंकि स्वामीजी—बता तो मैं दूँगा, पर इसमें आपको अन्नके बिना हम जी नहीं सकते। अन्नसे भी जल ज्यादा फायदा नहीं है, नुकसान है। मैल कैसे लगा, कब लगा,

महँगे मिलते हैं। अन्न उससे भी सस्ता मिलता है; क्योंकि स्वामीजी—अन्नके बिना हम जी नहीं सकते। अन्नसे भी जल ज्यादा फायदा नहीं है, नु आवश्यक है, इसलिये वह अन्नसे भी सस्ता मिलता है। इससे क्या फायदा जलके बिना तो हम कुछ रह सकते हैं, पर हवाके बिना तो बीती हुई बातकी

सब जगह मिलती है। परन्तु परमात्मा उससे भी सस्ते हैं! हवा कहीं कम मिलती है, कहीं ज्यादा; कभी तेज चलती है, कभी मन्द; परन्तु परमात्मा सब जगह तथा सब समय समान रीतिसे ज्यों-के-त्यों परिपूर्ण हैं, और वे सबके अपने

हैं। उनके बिना कोई भी चीज नहीं है। पृथ्वी, जल, हवा,

रह ही नहीं सकते, इसलिये हवा मुफ्तमें मिलती है तथा

अग्नि और आकाश तो सदा नहीं रहेंगे, पर परमात्मा सदा ज्यों-के-त्यों रहेंगे। अतः परमात्मा सबसे आवश्यक हैं और सबसे सस्ते हैं। आपने सांसारिक चीजोंको ज्यादा महत्त्व दे रखा है, इसलिये परमात्मा दीखते नहीं। इनको इतना महत्त्व मत दो, परमात्मा दीख जायँगे, उनकी प्राप्ति

हो जायगी। केवल उनको याद रखो कि हमारे प्रभु सबमें हैं। उनको याद करनेमें कोई खर्चा नहीं, कोई परिश्रम नहीं, और निहाल हो जाओगे! जिसने परमात्माको हर समय याद रखा, वह सन्त-महात्मा हो गया!

समय याद रखा, वह सन्त-महात्मा हा गया! आप लोगोंके पास धन-सम्पत्ति, घर-परिवार आदि है, फिर भी चिन्ता रहती है। परन्तु विरक्त सन्तोंके पास

कुछ भी नहीं होता, जंगलमें रहते हैं, फिर भी वे मस्तीमें रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनको आपलोगोंसे भी कोई बढ़िया चीज मिली है। वह चीज केवल सन्तोंके लिये ही हो, ऐसी बात नहीं है। वह चीज सब भाई-बहनोंके लिये है। वह मिल जाय तो फिर मौज-ही-मौज

×

ज्यादा फायदा नहीं है, नुकसान है। मैल कैसे लगा, कब लगा, ाता है। इससे क्या फायदा? उसको साफ कर दो, इतनी बात है।

बीती हुई बातकी चिन्ता करना बुद्धिमानी नहीं है। एक कहावत है कि 'गयी तिथि ब्राह्मण भी बाँचता नहीं।' आज आपको रुपये और भोग अच्छे लगते हैं, बस, यही बन्धनका कारण है। जबतक ये अच्छे लगते

बस, यही बन्धनका कारण है। जबतक ये अच्छे लगते रहेंगे, तबतक छूटोगे नहीं। जब ये अच्छे लगने बन्द हो जायँगे, पट प्राप्ति हो जायगी! हम इसलिये फँसे हैं कि हम रुपये और भोग चाहते हैं, मान-बड़ाई चाहते हैं,

जायगा।

×

×

×

लोग निन्दा करें तो करने दो। सब लोगोंको अपनी
तरफसे छुट्टी दे दो, वे चाहे निन्दा करें, चाहे प्रशंसा करें,
जिसमें वे राजी हों, करें। आप सबको छुट्टी दे दो तो

आपको छुट्टी (मुक्ति) मिल जायगी! प्रशंसामें तो मनुष्य फँस सकता है, पर निन्दामें पाप नष्ट होते हैं। कोई झूठी निन्दा करे तो चुप रहो, सफाई मत दो। सत्यकी सफाई देना सत्यका निरादर है। भरतजी कहते हैं— जानहुँ रामु कुटिल किर मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥

जानहुँ रामु कुटिल किर मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रित मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥
(रा०च०मा० २।२०५।१-२)
दूसरा आदमी हमें खराब समझे तो इसका कोई

अगर आप अच्छे हो तो अच्छे ही रहोगे, भले ही पूरी

सत्कार चाहते हैं। यह चाहना छोड़ दें तो सब ठीक हो

ई- मूल्य नहीं है। भगवान् दूसरेकी गवाही नहीं लेते। दूसरा गौज आदमी अच्छा कहे तो आप अच्छे हो जाओगे, ऐसा कभी होगा नहीं। अगर आप बुरे हो तो बुरे ही रहोगे।

है, आनन्द-ही-आनन्द है!! ×

दुनिया बुरा कहे। लोग निन्दा करें तो मनमें आनन्द आना खटपट, मतभेद नहीं होना चाहिये। पहले शैवों और चाहिये। एक सन्तने कहा है-वैष्णवोंमें आपसमें बडी खटपट थी। उसको गोस्वामीजी महाराजने दूर किया। उन्होंने शंकर और विष्णुको एक मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति बताया और दोनोंको एक-दूसरेका उपासक बताया। नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे। शंकरजीके लिये कहा—'सेवक स्वामि सखा सिय पी श्रेयोऽर्थिनो हि पुरुषाः परतुष्टिहेतो-के'(रा०च०मा० १।१५।४) अर्थात् शंकरजी रामजीके र्दुःखार्जितान्यपि धनानि परित्यजन्ति॥ सेवक भी हैं, स्वामी भी हैं और मित्र भी हैं। जैसे, (जीवन्मुक्तिविवेक २) 'मेरी निन्दासे यदि किसीको सन्तोष होता है, तो शंकरजीने हनुमान्जीका रूप धारण करके रामजीकी बिना प्रयत्नके ही मेरी उनपर कृपा हो गयी; क्योंकि सेवा की। लंकापर चढ़ाई करनेसे पहले रामजीने कल्याण चाहनेवाले पुरुष तो दूसरोंके सन्तोषके लिये शंकरजीका पूजन किया। तात्पर्य है कि शैवों और अपने कष्टपूर्वक कमाये हुए धनका भी परित्याग कर देते वैष्णवोंके बीच मतभेदको लेकर आपसमें खटपट बिलकुल हैं (मुझे तो कुछ करना ही नहीं पड़ा)!' नहीं होनी चाहिये। किसी आदमीके पास दस हजार रुपये हैं और वह वैष्णवलोग शिवजीके मन्दिरमें नहीं जाते तो इसमें टिकट लेकर गाड़ीपर चढ़ा है, पर दूसरे कहते हैं कि एक छिपी हुई बात है। वैष्णवलोग मस्तकपर जो तिलक इसके पास एक कौड़ी भी नहीं है, टिकट भी नहीं लिया करते हैं, उसमें तीन रेखाएँ होती हैं—दोनों तरफकी होगा, तो क्या उस आदमीको दु:ख होगा? वह तो रेखाएँ भगवानुके चरणोंका चिह्न और दोनोंके बीचकी सोचेगा कि अच्छी बात है, मेरी रक्षा हो गयी, कोई लाल रेखा लक्ष्मीजीका चिह्न है। इस तिलकको लगाकर जेबकतरा नजदीक नहीं आयेगा! शंकरके सामने नहीं जाते; क्योंकि भगवान् शंकर श्रोता-आपने कहा कि सफाई देना सत्यका नग्नवेशमें हैं, फिर लक्ष्मीजीका चिह्न लगाकर उनके निरादर है, यह ठीक समझमें नहीं आया। सामने कैसे जायँ? परन्तु इसका तात्पर्य खटपट नहीं स्वामीजी—कोई पूछे तो सत्य बात कह दे। बिना होना चाहिये। किसीसे भी वैर रखना नरकोंमें ले पूछे लोगोंमें कहनेकी जरूरत नहीं। बिना पूछे सफाई जानेवाला है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं-देना सत्यका निरादर है। हम पाप नहीं करते, किसीको संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। दु:ख नहीं देते, फिर भी हमारी निन्दा होती है तो उसमें ते नर करहिं कलप भिर घोर नरक महुँ बास॥ दु:ख नहीं होना चाहिये, प्रत्युत प्रसन्नता होनी चाहिये। (रा०च०मा० ६।२) भगवानुकी तरफसे जो होता है, सब मंगलमय ही होता वास्तवमें भगवान् विष्णु और शंकर एक हैं। है। इसलिये मनके विरुद्ध बात हो जाय तो उसमें आनन्द सत्त्वगुणका रंग सफेद, रजोगुणका रंग लाल और मनाना चाहिये। तमोगुणका रंग काला है। सृष्टिकर्ता (रजोगुणी) ब्रह्माजीका रंग तो लाल है, पर विष्णुका काला और शंकरका सफेद श्रोता—रामायणमें आया है—'संकर भजन बिना रंग है, जबिक पालनकर्ता (सत्त्वगुणी) विष्णुका सफेद नर भगति न पावइ मोरि' (रा०च०मा० ७।४५) तो और संहारकर्ता (तमोगुणी) शंकरका काला रंग होना क्या शंकरके भजनके बिना हम भगवान्की भक्ति नहीं पा चाहिये। कारण यह है कि शंकरका ध्यान करनेसे विष्णु काले हो गये और विष्णुका ध्यान करनेसे शंकर सफेद सकते? स्वामीजी—इसमें एक मार्मिक बात है कि आपसमें हो गये! विष्णुके भक्त जो तिलक करते हैं, वह शंकरके

भाग ८९

संख्या ४] साधकोंवे	ज्रप्रति—
<b>*******************</b>	**************************************
त्रिशूलके समान है, और शंकरके भक्त जो तिलक करते	चिन्ता दीनदयाल को, मो मन सदा आनन्द।
हैं, वह विष्णुके धनुषके समान है।	जायो सो प्रतिपालसी, रामदास गोबिन्द॥
आपके घरोंमें भी आपसमें खटपट नहीं होनी	वास्तवमें आप बिलकुल भगवान्के ही हैं, पर
चाहिये। आपसमें प्रेम होना चाहिये। उपासना भले ही	आपने मान रखा है कि मैं अमुक देश, गाँव, मोहल्ले,
अलग-अलग हो, पर आपसमें वैर नहीं होना चाहिये।	घर आदिका हूँ। यह देश, गाँव, मोहल्ला, घर आपका
आपसका वैर विनाश करनेवाला होता है। किसीसे वैर	नहीं है। आप यहाँ आये हो। इसलिये मेरी सम्मति यही
करोगे तो फिर <b>'वासुदेव: सर्वम्'</b> (सब संसार भगवत्स्वरूप	है कि आप आजसे ही यह स्वीकार कर लो कि 'मैं
है)-का अनुभव कैसे करोगे? घरमें साथ-साथ रहो तो	भगवान्का हूँ'। हर समय भगवान्के ही होकर रहो।
प्रेमके लिये और मतभेद होनेपर अलग-अलग हो जाओ	भजन करो तो भगवान्के होकर भजन करो। संसारके
तो प्रेमके लिये। आपसका प्रेम परमात्माकी तरफ ले	होकर भजन करते हो तो वह भजन बढ़िया नहीं होता।
जानेवाला होता है। आपसमें खटपट रखते हो तो आपने	× × ×
सत्संग क्या किया? यह तो कुसंग है। कोई किसी भी	<b>श्रोता</b> —अच्छे कर्म करना या संसारको अपना न
इष्टको माने, पर आपसमें प्रेम होना चाहिये। हमारे	मानना या भगवान्को अपना मानना—तीनों साधनोंमें
सत्संगमें सभी सम्प्रदायोंके लोग आते हैं, मुसलमान भी	कौन-सा साधन बढ़िया है, जिससे हमारे राग-द्वेष दूर
आते हैं। सुजानगढ़में मुसलमान लोग मुझे अपने घर भी	हो जायँ और हमारा कल्याण हो जाय?
ले गये थे। सत्संग करनेसे कई मुसलमानोंने शराब और	स्वामीजी—भगवान्को अपना मानना सबसे श्रेष्ठ
मांसका सेवन करना छोड़ दिया। इसलिये आप सबके	साधन है। भगवान्को अपना माननेसे भगवत्कृपासे राग-
साथ प्रेम रखो, सबका हित चाहो। प्रेम ऐसी चीज है,	द्वेष भी दूर हो जाते हैं, समता भी आ जाती है, शान्ति भी
जो जड़तामें भी चेतनता ले आती है।	मिल जाती है, मुक्ति भी हो जाती है। कारण कि मूलमें हम
× × ×	भगवान्के अंश हैं—' <b>ममैवांशो जीवलोके'</b> (गीता १५।
अगर आप सुगमतासे भगवत्प्राप्ति चाहते हैं तो	७)। इस मूलको ठीक करनेसे सब ठीक हो जायगा।
मेरी प्रार्थना है कि आप 'मैं भगवान्का हूँ'—यह मान	<b>श्रोता</b> —इष्ट तो एक होना चाहिये, पर जब हम
लें। यह 'चुप साधन' अथवा 'मूक सत्संग' से भी	<b>'हरे राम</b> '''' मन्त्रका जप करते हैं तो हमें राम और
बढ़िया साधन है! जैसे आपके घरकी कन्या विवाह	कृष्ण दोनों याद आते हैं! हम क्या करें?
होनेपर 'मैं ससुरालकी हूँ'—यह मान लेती है, ऐसे आप	स्वामीजी—राम और कृष्ण दो नहीं हैं, एक ही
'मैं भगवान्का हूँ'—यह मान लें। यह सबसे सुगम और	हैं—यह विचार कर लो अथवा यह मान लो कि राम
सबसे बढ़िया साधन है। इसको भगवान्ने सबसे अधिक	ही कृष्ण बने हैं। चाहे दोनोंको एकरूप कर लो, चाहे
गोपनीय साधन कहा है— <b>'सर्वगुह्यतमम्'</b> (गीता १८।	दोनोंको एकरूप मान लो।
६४)। गीताभरमें यह <b>'सर्वगुह्यतमम्'</b> पद एक ही बार	<b>श्रोता</b> —भगवान्के आनन्दकी अनुभूति क्यों नहीं
आया है। मैं हाथ जोड़कर प्रेमसे कहता हूँ कि मेरी	होती ?
जानकारीमें यह सबसे बढ़िया साधन है।	<b>स्वामीजी</b> —संसारके सुखमें आसक्ति होनेके कारण।
आप जहाँ हैं, वहाँ ही अपनेको भगवान्का मान	इसको जबतक नहीं छोड़ोगे, तबतक भगवान्के आनन्दका
लो। चिन्ता बिलकुल छोड़ दो। जो हमारा मालिक है,	अथवा निजानन्दका अनुभव नहीं होगा।
वह चिन्ता करे, मैं चिन्ता क्यों करूँ?	× × ×
<b>─→</b> ••	<b>&gt;+</b>

'भावे हि विद्यते देवः' (दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती) मूर्तिकार मूर्ति निर्माण करते समय जूते पहने हुए स्त्रीत्वकी दृष्टिसे समानता होते हुए भी भावोंमें पार्थक्य

होनेसे सबकी भावनाएँ अलग-अलग होती हैं। वैसे ही पैरसे दबाकर पत्थरको तराशता है। आकृतिके उभर

आनेपर फिर वह उसपर पैर नहीं रखता, जूते भी मूर्तिमें जिसकी जैसी भावना होती है, उसके लिये मूर्तिका उतारकर सधे हाथोंसे मूर्तिके सौन्दर्यको निखारता है। उसी मूर्तिके मन्दिरमें प्रतिष्ठित हो जानेपर वही मूर्तिकार

मन्दिरके बाहर जूते उतारकर मन्दिरकी प्रथम सीढ़ीको प्रणाम करते हुए आकर मूर्तिको दण्डवत् प्रणामकर प्रार्थना भी करता है: क्योंकि उसकी दुष्टिमें प्राणप्रतिष्ठा हो जानेके कारण वह अब पाषाण-प्रतिमा न होकर भावनाकी प्रगल्भताके कारण साक्षात् भगवान् हैं। लकड़ी, पत्थर, मिट्टी तथा धातु इत्यादिकी मूर्तियोंमें नहीं,

साधककी भावनामें ही वह शक्ति है, जिससे मूर्तिसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं-न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये। भावे हि विद्यते देवो तस्मात् भावबलं बलम्॥

भावकी शक्तिसे ही श्रीरामकृष्णपरमहंसजीने भुवनेश्वरके कालीमन्दिरकी मूर्तिसे साक्षात् कालिकाको प्रकट कर लिया था तथा हिरण्यकशिपुके पूछनेपर कि तेरे प्राणहरणार्थ किये हुए सम्पूर्ण प्रयासोंको विफलकर तेरी प्राणरक्षा करनेवाला रक्षक कहाँ है ? 'वह सर्वत्र है, जिस खम्भेमें आपने मुझे बाँध रखा है, उसमें भी है', इस बातको सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीहरि नृसिंहरूपमें प्रकट हो गये थे। हमारे लौकिक तथा पारमार्थिक सभी कार्य भावनाओंपर

ही अवलम्बित होते हैं। एक स्त्रीमें पिता वात्सल्यभाव रखते हुए सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद देता है, उसका पित उसमें माधुर्यभाव रखता है, पुत्र मातृभावसे सेवा-शुश्रुषा करते हुए चरणोंमें प्रणामकर आशीर्वादकी कामना करता है, भाई बहनका भाव रखकर यथासाध्य हित-

स्वरूप तथा उपासनाका फल भी वैसा ही होता है। ये सात भावनानुसार ही फल देते हैं— मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ। यादुशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादुशी॥

िभाग ८९

मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषधि तथा गुरुके प्रति जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसा ही फल मिलता है। वासना मनुष्यको हैवान बना देती है, भावना पत्थरको भगवान् बना देती है तथा उपासना मनुष्यको भगवान् बना देती है। भगवान्की बनायी चलती-बोलती मूर्तियों (सभी प्राणियों)-में जिसे भगवान्का दर्शन नहीं होता, उसे किसी मूर्तिकारकी बनायी मूर्तिमें

कपिलने माता देवहतिको उपदेश देते हुए कहा है-माताजी! मैं आत्मारूपसे सदा सभी जीवोंमें स्थित हूँ, इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्माका अनादर करके केवल प्रतिमामें ही मेरा पूजन करते हैं, उनकी वह पूजा स्वॉंगमात्र है। अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा। तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥ भगवान् सभीमें अन्तरात्मारूपसे विराजमान हैं। अतः किसीका अपमान-तिरस्कार न करते हुए सर्वहित

भगवान् कैसे मिलेंगे? उसे तो केवल परिश्रम और

विडम्बना ही हाथ लगेगी। श्रीमद्भागवतमें भगवान्

सम्पादनपूर्वक उपासना ही सच्ची पूजा है। मनुष्यके पास केवल तीन वस्तुएँ होती हैं—तन, मन तथा धन। तन सबमें भगवद्भाव रखकर सेवा करनेसे, मन भगवद्भिक्तसे तथा धन सत्पात्र (अभावयुक्त)-को देनेसे पवित्र होता है। संसारकी सेवामें तन तथा धन मुख्य होता है, मन

सम्पादन करता है, कामी पुरुष नेत्र, दन्त, केश तथा गौण होता है, परंतु भगवान्की सेवामें तन तथा धन गौण अंगोंकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर वासनात्मक भाव रखता है तथा एक साधक उसे हाड़-मांसादि अपवित्र धातुओंसे है, मन ही मुख्य है। मन मुक्तिरूपी तालेकी चाभीके निर्मित्तर्वमालम् त्रिक्षा देवस्य क्रिक्स क्रिक्स क्रिक्स मिल्ली है भिर्मित अपनि है अपनि हो क्रिक्स कर कर कर कि

'भावे हि विद्यते देवः' संख्या ४] 23 भगवदुपासनाद्वारा वासनाहीन होकर ईश्वरमें लगनेपर निर्विकारी, इच्छारहित, सर्वव्यापी, निराकार, मायारहित मुक्ति प्रदान करता है। कृटस्थ ब्रह्म नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त तथा सबका मुक्तिदाता शरीर तथा धनसे भगवत्सेवा-पूजा करनेपर प्राय: होते हुए भी वह प्रेमास्पद भगवान् प्रेमी-भक्तोंके हाथका मन भाग जाता है, परंतु मनसे की हुई सेवा-पूजा, तन खिलौना बन जाता है। मैं उस अति आश्चर्यजनक प्रेम-तथा धनसे परिपुष्ट होकर ध्यानकी प्रगाढ्ताको बढ़ाकर बन्धनकी वन्दना करता हूँ— चित्तको भगवन्मय बना देती है, इसी कारण मानसी अहो चित्रमहो चित्रं वन्दे तत्प्रेमबन्धनम्। सेवा-पूजाको मुख्य बताया गया है-यद्बद्धं मुक्तिदं मुक्तं ब्रह्मक्रीडामृगीकृतम्॥ प्रेम-भावभावित होनेके कारण ही तो गोपियोंके कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता। चेतस्तत्प्रवणं सेवा तिसद्ध्यै तनुवित्तजा॥ छाछके लोभमें वे नाचते हैं, भक्तिमती करमाबाईकी खिचड़ी आरोगते हैं, दुर्योधनके मेवे-मिष्टान्नादि छप्पन गीतामें 'मन्मना भव' कहकर भगवान्ने अपनेमें मन लगानेकी प्रेरणा दी है तथा 'मय्यर्पितमनोबुद्धिः' भोगोंको त्यागकर विदुरानीके छिलकोंको सराहते हुए खाते हैं, शबरीके जूठे बेर तथा सुदामाके सूखे चिउड़ेका का फल 'मामेवैष्यत्यसंशयम्' नि:सन्देह भगवत्प्राप्ति बताया है। 'जैसा करे संग तैसा चढ़े रंग', यह भोग लगाते हैं। कहावत प्रसिद्ध है। भगवान् प्रेम, कृपा, सौहार्द, माधुर्य प्रेम-भावपूरित हृदयकी प्राप्ति असीम भगवत्कृपासे तथा दयालुता इत्यादि गुणगणोंके भण्डार एवं निर्विकार होती है। भगवत्प्रदत्त प्रेम जब क्षणभंगुर—विनाशशील हैं। अत: शक्तिपुंजसे जुड़कर अन्धकारनाशक विद्युत्-वस्तु एवं व्यक्तियोंके प्रति होता है तब मोह, दु:ख, बल्बकी भाँति भगवत्प्रेम-भावभावित भक्त स्वयं दिव्य अशान्तिका जनक होता है और राग कहलाता है, वही होकर अपने सान्निध्यमें आनेवालोंमें भी निर्विकारिता प्रेम ईश्वरके प्रति होनेपर अनुराग कहलाता है। राग लानेमें समर्थ हो जाता है-स्वार्थ, पशुता एवं जड़ताका जनक है, जिससे मनके अधोगामी होनेसे अशान्ति एवं पतनकी सम्भावनाएँ हरी प्रेमरस जे पगे, तन-मन की सुधि नाहिं। 'महेश्वरानन्द' तिन संगत, सकल विकार नसाहिं॥ बढ़ती हैं, जबिक अनुराग त्याग एवं परमार्थका जनक भण्डारेके समय अनुभवमें आया है, 'भोजन कर है, जिससे मन ऊर्ध्वगामी होता है और मनुष्य शान्ति एवं लो ' कहनेपर कम लोग भोजन करते हैं, परंतु 'भगवान्का परमकल्याणकी ओर बढ़ता है। रागसे दु:ख-दोषोंकी प्रसाद पा लो' कहनेपर भोजन करनेवालोंकी संख्या बढ़ अभिवृद्धि तथा भगविद्वमुखता बढ़ती है, जबिक अनुरागसे जाती है। जब अन्नसे भगवान्का सम्बन्ध जुड़ते ही सद्गुणोंकी अभिवृद्धि, सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है। भावना बढ़ जाती है, जिससे भण्डारेके भोजनका महत्त्व राग गहनतम अन्धकार है, जबिक अनुराग दिव्यता-बढ़ जाता है, तब परमेश्वरसे सम्बन्ध जोड़नेवाले निर्मलतायुक्त सूर्य है। राग विषमिश्रित मधु है तो अनुराग मनुष्यकी महत्ता क्यों नहीं बढ़ेगी? श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने स्वर्गीय अमृत है। सांसारिक सुख-सामग्रियोंकी परिपूर्ण सनातनसे कहा है—'भक्तिबले पार तुमि ब्रह्माण्ड उपलब्धता होनेपर भी भगवान्के प्रति प्रेम न होनेसे शोधिते।' भक्तिकी शक्तिद्वारा तो तुम ब्रह्माण्डको भी जीवनमें पूर्णता नहीं आती। दिव्य, शुद्ध, विकारहीन बना सकते हो। काम बड़ो, धन-धाम बड़ो, जग में यश छायो नाम बड़ो है। यह प्रेमी-भक्तोंके प्रेम-भावकी ही विशेषता है कि ज्ञान बड़ो, बहु मान बड़ो, वंश कुटुम्ब गुमान बड़ो है।। शक्ति, ऐश्वर्य, धर्म, यश, ज्ञान, वैराग्य, तप, स्रष्टापन, गुन-रूप बड़ो, पुरुषार्थ बड़ो, बल-वैभव इन्द्र समान बड़ो है। द्रष्टापन तथा सम्यक् आत्मबोध—इन दस ऐश्वर्योंसे महेश्वरानंद हरि भगति बिना, या जीवन में सब घटो ही घटो है।। युक्त तथा क्लेश, कर्म-विपाक और आशयशून्य, अजन्मा, याद रखो, जो आपको छोड़ दे या जिसे आपको

अपना तो वही है, जो कभी आपको न छोड़े एवं आप प्रेमी-प्रेयसीभाव)। कई विद्वानोंने ज्ञानियों-योगियोंके जिसे छोड़ना चाहकर भी न छोड़ सको, उसे पहचानकर शान्तभावको छठा भाव स्वीकार किया है। इनमेंसे जो उसमें ममत्वभाव रखो। ममत्वरूपा भिक्त पाँच प्रकारकी रुचे, उसी भावकी दृढ़तासे अवश्य कल्याण होगा। होती है—१. भगवान् हमारी आत्मा अर्थात् परमप्रेमास्पद ममता रखिए राम सों समता सब संसार। हैं, २. स्वामी-सेवक-भाव, ३. पिता-पुत्र या माता-पुत्र- सेवा करिए सर्व की तब होवे उद्धार॥

सन्त-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे निजस्वरूप! जो सभीके अपने हैं, वे ही सर्वसमर्थ हैं। मिली

सच्ची असमर्थता जीवनका वरदान है। यह अनन्तका मंगलमय विधान है कि सर्वसमर्थ असमर्थको मिलते हैं, अपना लेते हैं और अपना अमूल्य प्रेम प्रदान करते हैं, पर यह रहस्य उन्हीं साधकोंको स्पष्ट होता है, जिन्होंने अपने द्वारा अपनी असमर्थताका अनुभव किया है। अब विचार यह करना है कि असमर्थता क्या है? पराश्रय और परिश्रमके आधारपर अपनेको सन्तोष देना बड़ी भारी असमर्थता है।

छोडना पडे, वह आपका अपना नहीं हो सकता, आपका

बड़ा भारा असमथता ह। इसी असमर्थताने जो अपने हैं, अपनेमें हैं, अभी हैं और सर्वसमर्थ हैं, उनमें अविचल आस्था नहीं होने दी। विचार उसपर किया जा सकता है, जो बुद्धिकी सीमामें हो, सीमित हो, परिवर्तनशील हो और अभावरूप हो।पर जो सदैव है, अनन्त है और असीम है, उसपर विचार नहीं किया जा सकता। वह तो आस्थाका विषय है। आस्थाका स्वतन्त्र पथ है। उस पथपर वे साधक चल पाते हैं, जो असमर्थतासे पीड़ित हैं। अपनी असमर्थताका अनुभव मानवका सर्वोत्कृष्ट अनुभव है। मिली हुई सामर्थ्यका सदुपयोग करनेपर आवश्यक सामर्थ्य बिना माँगे ही मिलती रहती है। सामर्थ्यका

सामर्थ्यका सद्पयोग तभी सम्भव है, जब यह मान

लिया जाय कि मिला हुआ अपना नहीं है और अपने

लिये नहीं है। सामर्थ्य भी सर्वसमर्थकी देन है। अत: उसके

सदुपयोगमें अभिमानके लिये कोई स्थान ही नहीं है।

सदुपयोग ही विश्वशान्तिका मूलमन्त्र है।

सर्वसमर्थके नाते उसकी विश्ववाटिकाकी सेवामें करना है। ऐसी सेवा वही कर सकता है, जो वाटिकाके फलोंकी आशा ही नहीं करता। मानव-जीवनमें जो करनेकी बात है, वह ज्ञानके अनुरूप ही होनी चाहिये। ज्ञान-विरोधी कार्य तो अकर्तव्य ही है, जिसका मानव-जीवनमें कोई स्थान ही नहीं है।

हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य आदिका सदुपयोग उसी

भाव, ४. सखा-भाव, ५. माधुर्य-भाव (पत्नी-पति या

भाग ८९

मानवको जन्मजात प्राप्त है, पर मानव अपनी भूलसे कर्तव्यसे विमुख होकर अकर्तव्यमें प्रवृत्त हो जाता है। मानवने मिली हुई स्वाधीनताका दुरुपयोगकर अपनेको अनुपयोगी बना लिया है। साथ ही वह स्वयं पराधीन होकर अनेक प्रकारकी बेबसी अनुभव करता है। यद्यपि स्वभावसे ही उसे स्वाधीनता प्रिय है। मानव जगत्के प्रति उदार, अपने लिये स्वाधीन तथा प्रभुके लिये प्रेमी होनेकी आवश्यकता अनुभव

करता है, पर भूलसे आसक्तिमें आबद्ध होकर वह

कर्तव्यका ज्ञान और उसके पालनकी सामर्थ्य

जिन्होंने मानवका निर्माण किया है, वे अपने दुलारे मानवको निरन्तर देखते रहते हैं और प्रतीक्षा करते रहते हैं कि मेरा दुलारा असमर्थता अनुभव करे और मैं उसे अपना लूँ। असमर्थताका अनुभव होनेपर साधकको जो वेदना होती है, वह करुणामयसे सही नहीं जाती है।

उदारता, स्वाधीनता और प्रेमसे वंचित हो गया।

साधन-सूत्र [ कुसंगसे व्यक्तिका नाश होता है ]

साधन-सूत्र

## ( आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा )

भगवान् श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही सुन्दर पंक्ति कहते हैं-

हैं। सभी अयोध्यावासी बड़े ही आनन्दित हैं, शुभ मंगलाचारके साज सज रहे हैं। राजद्वारमें बड़ी भीड़ हो

रही है। श्रीरामके बाल-सखा राजतिलकका समाचार सुनकर हृदयमें हर्षित होते हैं तथा दस-पाँच मिलकर

श्रीरामके पास जाते हैं। प्रभु श्रीराम उनकी कुशल-क्षेम पूछते हैं। नगरमें सभीकी अभिलाषा है कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस-जिस योनिमें जनमें, वहाँ-वहाँ हम सेवक हों और सीतापित श्रीराम हमारे स्वामी हों

संख्या ४ ]

परंतु रानी कैकेयीके हृदयमें बडी जलन हो रही है। मन्थराके फैलाये जालमें फँसकर वह कहती है—'हे

तथा यह नाता अन्ततक निभ जाय।

सखी! संसारमें मेरा तेरे समान हितकारी और कोई नहीं है। तू मुझ बही जाती हुईके लिये सहारा हुई है।' कैकेयी कोपका सब साज सजकर कोपभवनमें सो जाती है और राज्य करती हुई भी वह अपनी दुष्ट बुद्धिसे नष्ट अर्थात् कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता।

नीचके मतके अनुसार चलनेसे चतुराई नहीं रह जाती। कैकेयी राजा दशरथकी प्रिय रानी थी और रामको

अपने पुत्र भरतसे भी अधिक प्रेम करती थी, किंतु मन्थराकी कुसंगतिमें आकर उसने अयोध्याका सुख छीन लिया। राजा दशरथका मरण हुआ। राम, लक्ष्मण, सीता चौदह वर्षके लिये वनवासको गये, भरतका कैकेयीसे

यह सब कैकेयीकी दुर्बुद्धिके कारण हुआ। श्रीरामचरितमानसका ही एक अन्य प्रसंग है. रावणका सदाचारी भाई विभीषण रावणको समझाता है—'हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदयमें रहती हैं, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकारकी

विछोह हुआ, स्वयं कैकेयीके दुर्दिन आरम्भ हो गये।

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥

(रा०च०मा० २।२४।८)

है, वहाँ परिणाममें अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ (दु:खकी स्थिति) रहती हैं। आपके हृदयमें उलटी बुद्धि आ बसी है। इसीसे आप हितको अहित और शत्रुको मित्र मान रहे हैं।' (रा०च०मा० ५।४०।५—७) रावण विभीषणको लात मारता है। विभीषण रावणका त्याग कर देते हैं तथा

प्रभु श्रीरामकी शरणागितमें चले जाते हैं। रावणने जिस क्षण विभीषणको त्यागा, उसी क्षण वह अभागा ऐश्वर्यसे हीन

सम्पदाएँ (सुखकी स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि

हो गया तथा सभी राक्षसोंकी मृत्यु निश्चित हो गयी। विभीषण जब भगवान् श्रीरामकी शरणमें जाते हैं तो वे विभीषणकी कुशल-क्षेम पूछते हुए कहते हैं-

हो जाती है। 'हे तात! नरकमें रहना अच्छा है, परंतु विधाता दुष्टका यहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज बड़ी ही संग कभी न दे।'

भाग ८९ \* देखना चाहिये कि हमारे लिये क्या उचित है तथा क्या जो व्यक्ति उचित सलाह नहीं मानता है तथा कुसंगमें रहता है, उसका नाश अवश्यम्भावी है। अनुचित है? हमें सदैव श्रेष्ठ व्यक्तियों-सा आचरण रावणका पूरे कुलके साथ नाश हो गया। करना चाहिये तथा कभी कुसंगमें नहीं पड़ना चाहिये। गलत आचरण होनेमें प्रधान कारण विषयोंकी आसक्ति श्रीमद्भागवतमें कान्यकुब्ज नगरके एक शास्त्रज्ञ ब्राह्मण अजामिलका चरित्र वर्णन हुआ है, जो शील, ही है; आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है, कामनाकी सदाचार और सद्गुणोंका खजाना था। वह ब्रह्मचारी, पूर्तिसे लोभ और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न विनयी, जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ, मन्त्रवेत्ता और पवित्र था। होता है। सारे दुराचरणकी जड़ काम, क्रोध और लोभ ही हैं। इसीलिये भगवान्ने कहा है—'काम, क्रोध और उसने गुरु, अग्नि, अतिथि और वृद्ध पुरुषोंकी सेवा की लोभ-ये तीन नरकके द्वार हैं; ये आत्माका नाश थी। वह समस्त प्राणियोंका हित चाहता, उपकार करता, आवश्यकताके अनुसार ही बोलता और किसीके गुणोंमें करनेवाले हैं, अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।' दोष नहीं ढूँढ़ता था। एक दिन वह अपने पिताके सांसारिक भोगोंकी आसक्ति एवं सांसारिक वस्तुओंके आदेशानुसार वनमें गया और वहाँसे फल-फूल, समिधा संग्रहकी रुचि महान् अनर्थकारी है। भोगोंकी आसक्ति और कुश लेकर घर लौटा। लौटते समय उसने एक एवं संग्रहको रुचि कभी मिट नहीं सकती। ज्यों-ज्यों भ्रष्ट, कामी, निर्लज्ज शराबी शूद्रको किसी वेश्याके साथ भोग भोगते जाते हैं, रुपयोंका संग्रह करते जाते हैं, त्यों-दुराचरण करते देखा। अजामिल कामसे मोहित हो गया त्यों उनकी रुचि बढ़ती जाती है-और उसकी सदाचार और शास्त्र-सम्बन्धी सभी चेष्टाएँ प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।' नष्ट हो गयीं। वह वेश्याका गुलाम हो गया और उसने श्रीमद्भावगतमें वर्णन आता है कि राजा ययाति अपनी कुलीन नवयुवती और विवाहिता पत्नीतकका स्त्रीके वशमें होकर एक हजार वर्षतक विषयोंका भोग परित्याग कर दिया। दासीके संसर्गसे दूषित होनेके करते रहे, अपने पुत्रकी युवावस्थातक ले ली, तब भी उनकी विषय-भोगोंको भोगनेकी इच्छाका शमन नहीं कारण उसका सदाचार नष्ट हो चुका था। वह पतित कभी बटोहियोंको बाँधकर उन्हें लूट लेता, कभी हुआ। अन्ततः उनको भोगोंसे विरक्ति नहीं हुई। तब वे लोगोंको जुएके छलसे हरा देता, किसीका धन धोखा-पश्चात्ताप करते हुए कहते हैं—'पृथ्वीमें जितने भी धान्य धड़ीसे ले लेता तो किसीका चुरा लेता। इस प्रकार (चावल, जौ आदि) सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं-वे अत्यन्त निन्दनीय वृत्तिका आश्रय लेकर वह अपने सब-के-सब मिलकर भी उस पुरुषके मनको सन्तुष्ट कुटुम्बका पेट भरता था और दूसरे प्राणियोंको बहुत ही नहीं कर सकते, जो कामनाओं के प्रहारसे जर्जर हो रहा है। विषयोंके भोगनेसे भोगवासना कभी शान्त नहीं हो सताता था। सकती, बल्कि जैसे घीकी आहुति डालनेपर आग और भागवतके इस दृष्टान्तसे यह शिक्षा मिलती है कि श्रेष्ठ व्यक्ति भी कुसंग पाकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। भड़क उठती है, वैसे ही भोगवासनाएँ भी भोगोंसे प्रबल गीतामें भगवान् कहते हैं-हो जाती हैं।' हमें यह भी नहीं मानना चाहिये कि भोग और 'अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप संग्रहकी रुचि नष्ट नहीं होती है। इतिहासमें सैकड़ों-ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।' हजारों ऐसे दृष्टान्त हैं, जिन्होंने भोगोंकी रुचिका नाश Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE.WITH LOVE BY Ayinash/Sh: भगवान्न हमें विवेक दिया है। उसके प्रकाशमें करनेक सम्बन्धमें आदर्श स्थापित किये हैं। स्वयं

संख्या ४] वृद्धजनोंके प्रति र	युवाओंका कर्तव्य २७
************************************	*************************************
भगवान्ने गीतामें कहा है—'पहले भी जिनके राग, भय	सकते। जबतक हममें ये दोष हैं, तबतक हमें इन दोषोंके
और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये और जो मुझमें अनन्य	नाशका प्रयत्न करते रहना चाहिये। अपने जीवनको हमें
प्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले	सदाचारी बनाना चाहिये तथा दुराचारी व्यक्तियोंका संग
बहुत-से भक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको	कभी नहीं करना चाहिये। जैसे अन्धेके पीछे चलनेवाला
प्राप्त हो चुके हैं।'	अन्धा गड्ढेमें गिरता है, वैसे ही दुष्ट व्यक्तियोंका
काम-क्रोधादि अन्त:करणके धर्म नहीं हैं, विकार	अनुसरण करनेवाला पतित होता है। हमें सदैव सत्पुरुषोंका
हैं। इसीलिये सत्संग, कुसंग पाकर ये घटते-बढ़ते रहते	संग करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंके सदुपदेश ही
हैं। घटने-बढ़नेवाली चीज नाशको प्राप्त हो सकती है।	हमारे मनकी आसक्तिको मिटाते हैं। हम यह दृढ़ निश्चय
काम-क्रोधके वशमें रहनेवाले व्यक्ति ज्ञानी नहीं कहे जा	कर लें कि कुसंग हमारा अध:पतन करनेवाला है।
<del></del>	<b></b>
वृद्धजनोंके प्रति युवाओंका कर्तव्य	
( श्रीइन्द्रमत	•
वृद्धावस्थामें मानव-जीवनको अभिशाप न बनने	४. प्रतिदिन उनके सामर्थ्य एवं ऋतुके अनुसार
देने एवं पारिवारिक सामंजस्य बनाये रखनेहेतु कतिपय	उपयुक्त समयपर उन्हें भ्रमणके लिये अवश्य ले जायँ।
मननीय एवं करणीय बिन्दु—	मन्दिर जानेमें ये काम दोहरा लाभ देगा। दर्शनलाभके
१. परिवारके सभी सदस्य प्रतिदिन प्रात:काल	साथ-साथ शरीरकी हलचलके कारण साधारण व्यायाम
उठनेके साथ ही अथवा स्नानोपरान्त वृद्ध माता-पिता,	भी हो जायगा।
दादा-दादी तथा अपनेसे बड़ोंके चरण-स्पर्श करते हुए	५. वृद्ध लोगोंके सामर्थ्यानुसार उन्हें धार्मिक,
उन्हें नमन करें, प्रणाम करें। हमारी भारतीय संस्कृतिके	आध्यात्मिक एवं सामाजिक कार्योंमें प्रतिभागी बनाते रहें,
अनुसार दाहिने हाथसे दाहिने पैरका एवं बाँयें हाथसे	जिससे वे अपने-आपको संसारसे विलग न समझें और
बाँयें पैरका अँगूठा स्पर्श करते हुए उनसे आशीर्वाद प्राप्त	न अनुपयोगी ही। कभी-कभी धार्मिक आख्यान, कथा,
करनेके साथ ऊर्जा भी प्राप्त करना न भूलें। ये	कहानी सुनानेहेतु उन्हें अभिप्रेरित करें।
पारम्परिक संस्कृति ही पारस्परिक प्रेम एवं अटूट	६. सत्संगका अवसर मिलनेपर परिवारके सदस्योंको
बन्धनका प्रथम सोपान है।	इस प्रकार तालमेल बैठाना चाहिये, जिससे उनकी इच्छा
२. प्रतिदिन वृद्ध पुरुषोंके साथ कुछ समय अवश्य	एवं सामर्थ्यके अनुसार उन्हें नियमित रूपसे वहाँ ले
व्यतीत करें, जिससे वे अपने-आपको उपेक्षित न समझें।	जायँ, जहाँ कथा–वार्ता होती हो। अक्षमताकी दशामें
वार्तालाप करें, खेलें, उनका समाचार जानें, हँसी-	उन्हें अकेला न छोड़ें।
विनोदकी बातें करें। हँसना स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त	७. श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण तथा अन्य धार्मिक
उपयोगी है। इससे समरसताके साथ-साथ सभी लाभान्वित	एवं आध्यात्मिक पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध करवाकर
होंगे।	उन्हें स्वाध्यायहेतु प्रेरित करें। उनकी असमर्थताकी
३. यथासम्भव इनके साथ प्रतिदिन प्रात:काल एवं	दशामें परिवारके किसी व्यक्तिद्वारा उन्हें श्रवण कराना
सायंकाल सन्ध्याके समय आरती, भजन, संकीर्तन	चाहिये।
अवश्य करें।	८. अवस्था एवं शक्तिके अनुसार वर्षमें कम-से-

कम एक बार उन्हें तीर्थदर्शनहेत् अवश्य ले जायँ तथा अधिक रुग्णावस्थामें उन्हें अकेला न छोडें। परिवारका सप्ताह/माहमें एक बार किसी धार्मिक स्थलपर अवश्य कोई भी प्राणी उनके पास बना रहे।

ले जायँ। ९. पराश्रित एवं वृद्धावस्थाके कारण यथासम्भव आवश्यकतानुसार तन, मन, धनसे उनकी सेवा-शुश्रुषामें

कोई कसर न छोड़ें। अपनेपर उन्हें भारस्वरूप न मानें,

यथासम्भव उन्हें नौकर अथवा पडोसीके आश्रित न होने दें। उन्हें पूर्ववत् जीवन जीनेके लिये प्रोत्साहित करते रहें।

१०. प्रेम देकर प्रेम, शान्ति देकर शान्ति एवं मान देकर मान प्राप्त करें। घृणा देकर घृणाकी ओर न बढ़ें। ११. प्रेम एवं विश्वासके साथ नन्हें-मुन्नोंको

उनकी गोदमें डालते रहें। कुछ समय पूर्वतक संयुक्त

परिवार होनेके फलस्वरूप बच्चे दादा-दादीके हाथों ही

पलते रहे हैं और आज भी एकल/सीमित परिवारके साथ

जीवनकी भागमभागमें उनकी वही उपयोगिता है, जो उन्हें

व्यस्त भी रखेगी और पारिवारिक प्रेमसे ओतप्रोत भी।

यथाशीघ्र, यथाशक्ति, यथासमय उपयुक्त उपचारका

अविलम्ब प्रबन्धकर समयपर दवा देनेका काम स्वयं

अथवा परिवारमें जो भी सदस्य प्रसन्नतापूर्वक इस

दायित्वका तत्परताके साथ निर्वहन कर सके, उससे

करवायें। अधिक अस्वस्थताकी स्थितिमें स्मरण-शक्तिका ह्रास होता है, अत: औषधि लेना उनके भरोसे न छोडें।

१२. सामयिक जाँचके अनुसार रुग्णावस्थामें उनका

है। प्रत्येक समय बिना माँगे उनकी समुचित इच्छाओंकी

पूर्ति करनेका प्रयास करें, इससे वे अपने आपको

गौरवान्वित अनुभवकर आशीषोंका पिटारा खोलते रहेंगे।

१४. भूलकर भी कटाक्ष एवं कटुतापूर्ण शब्दोंका आदान-प्रदानकर उन्हें अतीतकी ओर न धकेलें। दुखी

न करें। अवस्थानुसार उनके स्वभावका ध्यान रखकर

शान्त रहें। उनके द्वारा पारिवारिक सामंजस्यकी आशा न रखते हुए परिवारके सभी सदस्योंको उनके साथ धैर्यपूर्वक सामंजस्य बनाना होगा।

१३. खान-पान, वस्त्र आदिमें उनकी इच्छाका

ध्यान रखें, पथ्यापथ्यके पूर्ण विचारके साथ उन्हें भोजन,

दुध, नाश्ता नियमित एवं निर्धारित समयपर देना अपेक्षित

१५. उनकी वैयक्तिक सम्पत्तिपर आपका ही अधिकार है, ऐसा मानकर भी वे उसका जैसे भी सद्पयोग करें, करने दें। दान-पुण्य करें तो करने दें।

परिवारके किसी भी सदस्य अथवा बाहरके प्राणी, संस्था आदिको दें तो सहर्ष उनका सहयोग ही करें, विरोध नहीं करें। इस विचारधाराके साथ आप भी पुण्यके भागी होंगे

भाग ८९

तथा परिवारके सभी प्राणी अनावश्यक मनमुटावसे बच जायँगे। यह सब कार्य कर्तव्य-बृद्धिसे करें, कोई

अहसान समझकर नहीं।

# - सबमें आत्मभाव -

हुगलीके सरकारी वकील स्वर्गीय शशिभूषण वन्द्योपाध्याय एक दिन वैशाखके महीनेमें दोपहरकी

कड़कती लुमें एक किरायेकी गाड़ीमें बैठकर एक प्रतिष्ठित व्यक्तिके घर पहुँचे। वे एक आवश्यक कार्यसे आये थे। उनका वहाँ स्वागत हुआ। फिर उस व्यक्तिने पूछा—'इस भयंकर दोपहरीमें आपने आनेका कष्ट क्यों किया? आप किसी नौकरके हाथ पत्र भेज देते तो भी यह काम हो जाता।'

श्रीशशिभूषणजीने कहा—'मैंने पहले नौकरको ही भेजनेका विचार किया था और पत्र भी लिख लिया था; किंतु बाहरकी प्रचण्ड गरमी तथा लू देखकर मैं किसी भी नौकरको भेजनेका साहस नहीं

कर सका। मैं तो गाड़ीमें आया हूँ, उस बेचारेको तो पैदल आना पड़ता। उसमें भी तो वही आत्मा है, जो मुझमें है।'

हमारी प्राचीन वैमानिक-कला संख्या ४ ] हमारी प्राचीन वैमानिक-कला ( श्रीदामोदरजी झा, साहित्याचार्य ) वर्तमान समयसे कुछ दिनों पूर्वतक वैमानिक कला सूत्रै: पञ्चशतैर्युक्तं व्योमयानप्रधानकम्। प्राय: नष्ट-सी हो गयी थी। बादमें पाश्चात्य विद्वानोंके वैमानिकाधिकरणमुक्तं भगवता स्वयम्॥ बुद्धिविकाससे विमान फिर इस संसारमें दिखायी देने अर्थात् भारद्वाज महामुनिने वेदरूपी समुद्रका मन्थन लगे हैं। कहा जाता है कि विमान नामकी कोई वस्तु करके यन्त्रसर्वस्व नामका ऐसा मक्खन निकाला है, जो पहले नहीं थी, बल्कि पिक्षयोंको आकाशमें उडते मनुष्यमात्रके लिये इच्छित फल देनेवाला है। उसमें देखकर भारतीयोंकी यह निरी कपोल-कल्पना थी कि उन्होंने चालीसवें अधिकरणमें वैमानिक प्रकरण कहा है, विमान नामकी कोई वस्तु पहले देशमें थी, जो आकाशमें जिस प्रकरणमें विमानविषयक रचनाके क्रम कहे गये हैं। उडती थी एवं जिसका उल्लेख रामायणादि ग्रन्थोंमें वह आठ अध्यायमें विभाजित किया गया है, जिसमें एक पाया जाता है। महर्षि कर्दमके विमानके विषयमें भी सौ अधिकार और पाँच सौ सूत्र हैं। उसमें विमानका

उनकी यही धारणा है; किंतु आज भी हमारे समक्ष उदाहरणार्थ एक ऐसा ग्रन्थरत्न उपस्थित है, जिससे यह मानना पड़ेगा कि विमानके विषयमें हमारे पूर्वजोंने

यह ग्रन्थ बड़ौदा राज्यके पुस्तकालयमें हस्तलिखित

जिस उच्च-कोटिका वैज्ञानिक तत्त्व ढूँढ निकाला था, उसे आज भी पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता खोज निकालनेमें असमर्थ ही हैं। वह ग्रन्थ है प्राचीनतम महर्षि भारद्वाजका बनाया हुआ 'यन्त्रसर्वस्व।' वर्तमान है, जो कुछ खण्डित है। उसका 'वैमानिक प्रकरण' बोधानन्दकी बनायी हुई वृत्तिके साथ छप चुका है। इसके पहले प्रकरणमें प्राचीन विज्ञानविषयके पचीस ग्रन्थोंकी एक सूची है, जिनमें अगस्त्यकृत 'शक्तिसूत्र', ईश्वरकृत 'सौदामिनीकला', भारद्वाजकृत 'अंशुमत्तन्त्र', 'आकाशशास्त्र' तथा 'यन्त्रसर्वस्व', शाकटायनकृत 'वायुतत्त्वप्रकरण', नारदकृत 'वैश्वानरतन्त्र', 'धूमप्रकरण' आदि हैं। वृत्तिकार बोधानन्द लिखते हैं— निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधि भारद्वाजो महामुनि:।

नानाविमानवैचित्र्यरचनाक्रमबोधकम

अष्टाध्यायैर्विभजितं शताधिकरणैर्युतम्॥

नवनीतं

नारायणः शौनकश्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा॥ चाक्रायणिर्धुण्डिनाथश्चेति शास्त्रकृतः स्वयम्। विमानचन्द्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथैव यन्त्रकल्पो यानिबन्दुः खेटयानप्रदीपिका। तथैव व्योमयानार्कप्रकाशश्चेति षट् क्रमात्। नारायणादिमुनिभिः प्रोक्तानि ज्ञानवित्तमैः॥ अर्थात् भारद्वाजमुनिने इस तरह विधानपूर्वक मंगलाचरण करके दूसरे श्लोकमें विमानशास्त्रके पूर्वाचार्यों तथा उनके बनाये हुए ग्रन्थोंके नाम भी कहे हैं। उनके नाम विश्वनाथके कथनानुसार इस प्रकार हैं-नारायण,

विषय ही प्रधान है।

एवं विधाय विधिवन्मङ्गलाचरणं मुनिः।

पूर्वाचार्यांश्च तद्ग्रन्थान् द्वितीयश्लोकतोऽब्रवीत्॥

विश्वनाथोक्तनामानि तेषां वक्ष्ये यथाक्रमम्।

शौनक, गर्ग, वाचस्पति, चाक्रायणि और धुण्डिनाथ। ये छ: ग्रन्थकार हैं तथा विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानबिन्दु, खेटयानप्रदीपिका और व्योमयानार्क-प्रकाश-ये छ: क्रमसे इनके बनाये हुए ग्रन्थ हैं।

यः समर्थो भवेद् गन्तुं स विमान इति स्मृतः॥

अर्थात् जो पृथ्वी, जल और आकाशमें पिक्षयोंके

समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्वरूपकम्॥ विमानकी परिभाषा बतलाते हुए कहा गया है-प्रायच्छत् सर्वलोकानामीप्सितार्थफलप्रदम्। पृथिव्यप्त्वन्तरिक्षेषु खगवद्वेगतः स्वयम्। तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम्॥

भाग ८९ समान वेगपूर्वक चल सके, उसका नाम विमान है। उसका अनुभव होनेपर इच्छाके अनुसार नवीन विमानरचना करनी चाहिये। **'रहस्यज्ञोऽधिकारी।'** (भरद्वाजसूत्र अ०१ सू०२)। 'गूढरहस्यो नाम—वायुतत्त्वप्रकरणोक्त-रीत्या वृत्ति— वातस्तम्भाष्टमपरिधिरेखापथस्य यासावियासाप्रयासा-वैमानिकरहस्यानि यानि प्रोक्तानि शास्त्रतः। दिवातशक्तिभिः सूर्यिकरणान्तर्गततमश्शक्ति-माकृष्य द्वात्रिंशदिति तान्येव यानयन्तृत्वकर्मणि॥ तत्संयोजनद्वारा विमानाच्छादनरहस्यम्।' एतेन यानयन्तृत्वे रहस्यज्ञानमन्तरा। सूत्रेऽधिकारसंसिद्धिर्नेति सूत्रेण वर्णितम्॥ अर्थात् गृढ् नामक पाँचवाँ रहस्य है। वायुतत्त्व-प्रकरणमें कही गयी रीतिके अनुसार वातस्तम्भकी जो विमानरचने व्योमारोहणे चालने तथा। आठवीं परिधिरेखा है, उस मार्गकी यासा, वियासा, स्तम्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये॥ प्रयासा इत्यादि वायुशक्तियोंके द्वारा सुर्यिकरणमें रहनेवाली वैमानिकरहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा यतोऽधिकारसंसिद्धिर्नेति सम्यग्विनिर्णितम्॥ जो अन्धकारशक्ति है, उसका आकर्षण करके विमानके विमानके रहस्योंको जाननेवाला ही उसके चलानेका साथ उसका सम्बन्ध करानेपर विमान छिप जाता है। 'अपरोक्षरहस्यो नाम—शक्तितन्त्रोक्त-अधिकारी है। शास्त्रोंमें जो बत्तीस वैमानिक रहस्य बतलाये गये हैं, विमानचालकोंको उनका भलीभाँति ज्ञान रोहिणीविद्युत्प्रसारणेन विमानाभिमुखस्थवस्तूनां रखना परमावश्यक है और तभी वे सफल चालक कहे प्रत्यक्षनिदर्शनिक्रयारहस्यम्।' जा सकते हैं। सूत्रके अर्थसे यह सिद्ध हुआ कि रहस्य अर्थात् अपरोक्ष नामक नवें रहस्यके अनुसार जाने बिना मनुष्य यान चलानेका अधिकारी नहीं हो शक्तितन्त्रमें कही गयी रोहिणी विद्युत् (विशेष प्रकारकी सकता; क्योंकि विमान बनाना, उसे जमीनसे आकाशमें बिजली)-के फैलानेसे विमानके सामने आनेवाली वस्तुओंको ले जाना, खड़ा करना, आगे बढ़ाना, टेढ़ी-मेढ़ी गतिसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। चलाना या चक्कर लगाना और विमानके वेगको कम 'सार्पगमनरहस्यो नाम—दण्डवक्रादिसप्त-अथवा अधिक करना आदि वैमानिक रहस्योंका पूर्ण विधमातरिश्वार्किकरणशक्तीराकृष्य यानमुखस्थ-अनुभव हुए बिना यान चलाना असम्भव है। वक्रप्रसारणकेन्द्रमुखे नियोज्य पश्चात्तदाहृत्य शक्त्यु-विमान चलानेके जो बत्तीस रहस्य कहे गये हैं, द्गमननाले प्रवेशयेत्। ततः तत्कीलीचालनाद्विमानस्य उनमेंसे कुछ रहस्योंका यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जा सर्पवद्गमनक्रियारहस्यम्।' रहा है, जिनके द्वारा यह ज्ञात होता है कि पाश्चात्य अर्थात् सार्पगमन नामक बाईसवें रहस्यके अनुसार विद्वानोंकी वैज्ञानिक कला प्राचीन भारतकी वैज्ञानिक दण्ड, वक्र आदि सात प्रकारके वायु और सूर्यकिरणोंकी कलासे कितनी पिछड़ी हुई है। शक्तियोंका आकर्षण करके यानके मुखमें जो तिरछे 'कृतकरहस्यो नाम—विश्वकर्मछाया-पुरुषमनु-फेंकनेवाला केन्द्र है, उसके मुखमें उन्हें नियुक्त करके मयादिशास्त्रानुष्ठानद्वारा तत्तच्छक्त्यनुसन्धान-पूर्वकं पश्चात् उसे खींचकर शक्ति पैदा करनेवाले नालमें प्रवेश तात्कालिकसङ्कल्पानुसारेण विमानरचनाक्रमरहस्यम्।' कराना चाहिये; तब उसके बटन दबानेसे विमानकी गति अर्थात् उन बत्तीस रहस्योंमेंसे यह कृतक नामक साँपके समान टेढ़ी हो जाती है। 'परशब्दग्राहकरहस्यो नाम—सौदामनीकलोक्त-तीसरा रहस्य है। विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु, मयदानव आदि विमानशास्त्रकारोंके बनाये हुए शास्त्रोंका अनुशीलन **प्रकारेण विमानस्थशब्दग्राहकयन्त्रद्वारा परविमानस्थ**-\_Hinduism\_Discord Server https://dsc.gg/dharma. | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha करनेसे उन-उन घति-क्रिया आदिम जो सामर्थ्यक्हें— जनसंभाषणादिसवशब्दाकषणरहस्यम्। आदि विमानशास्त्रकारोंके बनाये हुए शास्त्रोंका अनुशीलन

संख्या ४] हमारी प्राचीन वै	मानिक-कला ३१
\$	
अर्थात् परशब्दग्राहक पचीसवें रहस्यके अनुसार	अपने विमानका नाश करनेके लिये शत्रुविमानोंके आनेपर
'सौदामनीकला' में कही गयी रीतिसे विमानपर जो	विमानके मुखमें रहनेवाली वैश्वानर नामकी नलीमें
शब्दग्राहक यन्त्र है, उसके द्वारा दूसरे विमानपरके लोगोंकी	ज्वालिनी (किसी गैसका नाम)-को जलाकर सत्तासी
बातचीत आदि शब्दोंका आकर्षण किया जाता है।	लिङ्क प्रमाण (लिङ्क डिग्रीकी तरह किसी मापका नाम
'रूपाकर्षणरहस्यो नाम—विमानस्थरूपाकर्ष-	है) गर्मी हो, उतना दोनों चक्कीकी कीली (बटन)
णयन्त्रद्वारा परविमानस्थितवस्तुरूपाकर्षणरहस्यम्।'	चलाकर शत्रु-विमानोंपर गोलाकारसे उस शक्तिको फैलानेसे
अर्थात् रूपाकर्षण नामक छब्बीसवें रहस्यके अनुसार	शत्रुके विमान नष्ट हो जाते हैं।
विमानमें स्थित रूपाकर्षण-यन्त्रद्वारा दूसरे विमानमें	इस वैमानिक प्रकरणमें कहे गये ग्रन्थ और
रहनेवाली वस्तुओंका रूप दिखलायी देता है।	ग्रन्थकारोंके नामसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि हमारे
'दिक्प्रदर्शनरहस्यो नाम—विमानमुखकेन्द्रकी-	पूर्वज विमानशास्त्रमें अत्यन्त निपुण थे। इसके रहस्योंको
लीचालनेन दिशाम्पतियन्त्रनालपत्रद्वारा परयानागम-	देखनेसे यह पता लगता है कि आजकलके वैज्ञानिक
नदिक्प्रदर्शनरहस्यम् ।'	विमानद्वारा जिन-जिन कलाओंका उपयोग करते हैं, वे
अर्थात् दिक्प्रदर्शन नामक अट्ठाईसवें रहस्यानुसार	सभी कलाएँ तो उन लोगोंके पास थीं ही, बल्कि जिन
विमानके मुखकेन्द्रकी कीली (बटन) चलानेसे 'दिशाम्पति'	कलाओंकी खोजमें आज आधुनिक वैज्ञानिक व्यस्त हैं
नामक यन्त्रकी नलीमें रहनेवाली सुईद्वारा दूसरे विमानके	या जिनकी कल्पना भी अभी वे नहीं कर पाये हैं, उनको
आनेकी दिशा जानी जाती है।	भी हमारे पूर्वज जानते थे। नवें रहस्यसे यह पता लगता
'स्तब्धकरहस्यो नाम—विमानोत्तरपार्श्वस्थ-	है कि दूरबीनकी तरह कोई दूरदर्शक यन्त्र उनके पास
सन्धिमुखनालादपस्मारधूमं संग्राह्य स्तम्भन-यन्त्रद्वारा	था। पचीसवें रहस्यसे यह सिद्ध होता है कि 'वायरलेस',
तद्धूमप्रसारणात् परविमानस्थसर्वजनानां स्तब्धी-	रेडियो भी उनके पास था। अट्ठाईसवाँ रहस्य बतलाता
करणरहस्यम्।'	है कि आजकलके वैज्ञानिकोंकी तरह दूरसे ही शत्रुविमानका
स्तब्धक नामके इकतीसवें रहस्यके अनुसार विमानकी	पता लगा लेनेकी कला भी उनके पास थी। बत्तीसवें
बायीं बगलमें रहनेवाली सन्धिमुख नामकी नलीके द्वारा	रहस्यसे यह स्पष्ट है कि जैसे ये लोग गैस, बम
अपस्मारनामक (किसी विशेष छेदसे निकलनेवाले)	आदिद्वारा शत्रु–संहार करते हैं, वैसे ही वे लोग भी ऐसे
धूएँको इकट्ठा करके स्तम्भनयन्त्रद्वारा दूसरे विमानपर	शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करते थे। छब्बीसवें रहस्यसे
फेंकनेसे उस दूसरे विमानमें रहनेवाले सब व्यक्ति स्तब्ध	मालूम होता है कि आजके वैज्ञानिकोंने टेलीफोनपर बात
(बेहोश) हो जाते हैं।	करनेवालेकी आकृति दिखा देनेवाले 'टेलीविजन' नामक
'कर्षणरहस्यो नाम—स्वविमानसंहारार्थं	जिस यन्त्रका आविष्कार किया है, वह इससे अधिक
परविमानपरम्परागमने विमानाभिमुखस्थवैश्वानरना-	चमत्कारिक रूपमें हमारे पूर्वजोंके पास था। इसमें जो
लान्तर्गतज्वालिनीप्रज्वालनं कृत्वा सप्ताशीतिलिङ्क-	विमानोंको अदृश्य करनेवाला पाँचवाँ रहस्य है तथा
प्रमाणोष्णं यथा भवेत् तथा चक्रद्वयकीलीचालनात्	उसके सदृश अन्य कई रहस्य हैं जो कि विस्तारभयसे
शत्रुविमानोपरि वर्तुलाकारेण तच्छक्तिप्रसारणद्वारा	यहाँ उद्भृत नहीं किये गये हैं, उन सबके विषयमें आजके
ु शत्रुविमाननाशनक्रियारहस्यम् ।'	वैज्ञानिक हमारी समझमें अभीतक सोच भी नहीं सके
अर्थात् कर्षण नामक बत्तीसवाँ रहस्य है। उससे	
· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	<b>&gt;+&gt;</b>

एक पलके सत्संगसे प्रभुप्राप्ति (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) यह बात आपको स्वत: याद रहेगी और मान्यताके सत्संग कितनी देर—पूरे जीवनमें यदि आप एक लवका सत्संग कर लें तो आपको भगवान्के दर्शन हो अनुरूप स्वतः आपका व्यवहार होगा। यह आपके

जीवनका अनुभव है।

जायेंगे, आप भगवान्के परम भक्त बन जायेंगे। लवका अर्थ है—एक सेकेण्डसे भी बहुत छोटा समय। सेकेण्डसे मानना क्रिया नहीं है। माननेमें पराधीनता, परिश्रम, अभ्यास अपेक्षित नहीं है। माननेमें एक पल भी नहीं

छोटा होता है पल, पलसे छोटा होता है लव, लवसे छोटा होता है निमिष। श्रीरामचरितमानसमें आया है-

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।

तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥ (रा०च०मा० ५।४)

इसका अर्थ है-हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेमें रखा जाय, तो भी वे सब

मिलकर (दूसरे पलड़ेपर रखे हुए) उस सुखके बराबर नहीं हो सकते, जो लवमात्रके सत्संगसे होता है।

सत्संगका आशय—चार शब्द हैं—सच्चर्चा, सिच्चन्तन, सत्कार्य, सत्संग। दो या दो-से अधिक

साधक प्रभुप्राप्तिके लिये जो बातचीत, विचार-विनिमय करते हैं, उसका नाम है सच्चर्चा। आप अकेले बैठकर प्रभुप्राप्तिके लिये जो साधना करते हैं, उसका नाम है

कार्य करते हैं, उनका नाम है सत्कार्य। यदि आप ये तीनों सुख, सुविधा, सम्मान, भोग-सामग्री प्राप्त करनेके उद्देश्यसे करेंगे तो आपको साधनामें विशेष लाभ नहीं

होगा, अपितु आप नाशवान् संसारमें फँस जायँगे। यदि आप सच्चर्चा, सच्चिन्तन, सत्कार्य प्रभुप्राप्तिके उद्देश्यसे करेंगे तो आपको काफी लाभ होगा, लेकिन जबतक आप सत्संग नहीं करेंगे, तबतक आपको पूरा लाभ नहीं

मिलेगा, मानव जीवनकी पूर्णता नहीं होगी। सत्संगका अर्थ है - सच्ची बातको मान लेना। माननेका अर्थ है—वह बात हर समय स्वत: याद रहना

मेरी पत्नी है, यह माँ है, यह बहन है, यह बेटी है तो

सिच्चन्तन। दूसरोंके सुख, हित, कल्याणके लिये जो

और उसीके अनुरूप स्वतः आचरण होना। उदाहरण लीजिये-आपने एक बार यह मान लिया-यह महिला

नहीं होगा।

होगा और अन्य सच्ची बातोंको आप आसानीसे मान पायेंगे। मुख्य सच्ची बातों एवं इनके माननेके प्रभावका विवरण इस प्रकार है-(१) जगत् मिथ्या है—जगत् क्या है? उत्तर

है—परिवर्तनका पुंज सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत् प्रति पल बदल रहा है और मौतके मुँहमें जा रहा है, उसका हर क्षण विनाश हो रहा है। यह कहीं भी स्थिर नहीं रहा।

लगता है। आपकी शादी हुई, आपने मान लिया—ये मेरे

पति हैं, यह मेरी पत्नी है। पुत्र हुआ, आपने मान

लिया—यह हमारा बेटा है। मानना अत्यन्त सरल है।

किसी एक बातको मान लेंगे तो आपको जबरदस्त लाभ

सच्ची बातें — सच्ची बातें अनेक हैं। यदि आप

इसलिये विवेक दृष्टिसे यह एकदम मिथ्या है, स्वप्नवत् है। सपनेमें सब कुछ सत्य भासित होता है, जागते ही गायब हो जाता है। श्रीरामचरितमानसमें आया है-सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ। जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

दुश्य-प्रपंचको हृदयसे देखना चाहिये।

(रा०च०मा० २।९२) इसका अर्थ है-जैसे स्वप्नमें राजा भिखारी हो जाय अथवा कंगाल स्वर्गका स्वामी इन्द्र हो जाय तो जागनेपर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है; वैसे ही इस

इसको माननेके निम्नलिखित प्रभाव होंगे-किसी भी वस्तु, व्यक्ति, अपने शरीर आदिमें आपकी ममता नहीं होगी। किसीके बनने-बिगड़नेमें आपको सुख-दु:ख

भाग ८९

(२) जगत् प्रभुका स्वरूप है—श्रीमद्भगवद्गीतामें

संख्या ४] एक पलके सत	<b>पंगसे प्रभु</b> प्राप्ति ३३
	***************************************
भगवान्की वाणी है—	श्रीरामचरितमानसमें भगवान्की वाणी है—
मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।	जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
मयि सर्विमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥	सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
(७।७)	(रा०च०मा० ५।४८।४-५)
'वासुदेवः सर्वमिति॥' (७।१९)	इसका अर्थ है—माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री,
इसका अर्थ है—हे धनञ्जय! मुझसे भिन्न दूसरा	शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार—इन सबके ममतारूपी
कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें	तागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर
सूत्रके मनियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है। सब कुछ	उसके द्वारा अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध दे।
वासुदेव ही है।	भक्त कैसे बनें? उत्तर है—शरीरको भगवान्का
संतवाणी है—	मेहमान, परिवारजनोंको भगवान्के स्वरूप मानकर इनकी
सब जग ईस्वर रूप है भलो बुरो निहं कोय।	भरपूर सेवा करें, इनको प्रेम दें। सामान-सम्पत्तिको
जाके जैसी भावना वैसो ही फल होय॥	भगवान्की धरोहर मानकर सँभालो एवं इसका सदुपयोग
श्रीरामचरितमानसमें आया है—	करो। ये सब करो भगवान्की प्रसन्नताके लिये, आप
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥	भक्त बन जायँगे। इसको माननेके निम्न प्रभाव होंगे—
(रा०च०मा० १।१८५।५)	आपकी चिन्ता मिट जायगी, शरीर नीरोग रहेगा,
इसका अर्थ है—मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान्	परिवारमें शान्ति रहेगी, परिवारजनोंमें प्रभुके दर्शन हो
सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो	जायँगे।
जाते हैं।	(४) भगवान् एवं माया करवाती है—इस
सत्य यही है—इस जगत्में विभिन्नरूपोंमें केवल	संसारका कोई भी व्यक्ति अपनी तरफसे कुछ भी
भगवान् हैं। प्रेम देनेसे वे उसी रूपमें प्रकट हो जाते हैं,	नहीं करता है; सबको सब कुछ भगवान् ही करवाते हैं
जिस रूपमें आप उनके दर्शन करना चाहते हैं। इस	अथवा भगवान्की माया करवाती है। श्रीरामचरितमानसमें
बातको माननेके निम्न प्रभाव होंगे—आप किसीको दु:ख	आया है—
नहीं देंगे, किसीका अपमान नहीं करेंगे, किसीके साथ	बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
लड़ाई नहीं करेंगे, किसीपर क्रोध नहीं करेंगे। सबको	जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥
सुख, सुविधा, सम्मान, प्रसन्नता देंगे। किसीके साथ	(रा०च०मा० १।१२४क)
व्यवहार करनेपर आपको यह बात याद रहेगी—ये मेरे	उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥
प्रभु हैं।	नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥
( <b>३ ) भगवान् मालिक हैं—</b> इस जगत्को बनाने,	(रा०च०मा० ४।११।७, ४।७।२४)
चलाने, इसपर नियन्त्रण करनेवाले भगवान् हैं। उन्होंने	लाग न उर उपदेसु जदिप कहेउ सिवँ बार बहु।
जगत्की केवल तीन चीजें आपको सौंपी हैं—शरीर;	बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥
निकट परिवारजन जैसे—पति, पत्नी, संतान आदि;	निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी॥
सामान-सम्पत्ति। इन तीनोंके मालिक भी भगवान् हैं।	बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरिसतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥
भगवान्ने अपना प्रेमी भक्त बनानेके लिये मुझे ये चीजें	(रा०च०मा० १।५१, १।५३।६, १।५६।५)
सौंपी हैं।	इनका अर्थ इस प्रकार है—तब महादेवजीने हँसकर

भाग ८९ कहा-न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्रीरघुनाथजी जब देता है। वह नुकसान कर ही नहीं सकता, दु:ख दे जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता ही नहीं सकता। नुकसान दो प्रकारका होता है-शारीरिक नुकसान अर्थात् शरीरको चोट पहुँचाना; है । (शिवजी कहते हैं) - हे उमा! स्वामी श्रीरामजी आर्थिक नुकसान अर्थात् रुपये, धन, जमीन आदिका सबको कठपुतलीकी तरह नचाते हैं। नुकसान। नुकसान होने एवं आपके साथ अपमानजनक (काकभुश्णिडजी कहते हैं) - हे पक्षियोंके राजा व्यवहार करनेपर आपको मनमें अशान्ति, चिन्ता एवं गरुड़जी! नट (मदारी)-के बन्दरकी तरह श्रीरामजी तनाव हो जाता है-इसका नाम है-दु:ख। कोई भी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं। व्यक्ति आपको न तो दु:ख देता है, न दे सकता है। यद्यपि शिवजीने बहुत बार समझाया, फिर भी आपको होनेवाले शारीरिक और आर्थिक नुकसानके सतीके हृदयमें उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी नौ कारण हैं-आपके कर्म, आपका भाग्य, आपका मनमें भगवान्की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए प्रारब्ध, आपकी ग्रहदशा, आपकी असावधानी, होनहार, दैवदोष-पितृदोष, विधिका विधान, भगवान्। आपको बोले। अपनी मायाके बलको हृदयमें बखानकर होनेवाले दु:खका कारण आपकी अपनी पाँच भूलें श्रीरामचन्द्रजी हँसकर कोमल वाणीसे बोले। हैं—पराधीनता; शरीर, स्वजन, सम्पत्तिमें आपका मोह; 'शरीर' को 'मैं' मान लेना; अपने इस सत्य स्वरूपको फिर श्रीरामचन्द्रजीकी मायाको सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सतीके मुँहसे भी झूठ कहला दिया। भूल जाना कि 'मैं' भगवान्का अंश हूँ, अमर आत्मा स्पष्ट है, सबको सब कुछ भगवान् या उनकी हूँ—भगवान्में आपका कमजोर विश्वास। माया करवाती है, लेकिन अहंकारी व्यक्ति यह मान लेता जब नुकसान करनेवाला आपको दिखायी नहीं देता है कि 'मैं करता हूँ'। इस मान्यताके कारण वह कर्म है तब तो आप भी यही सोचते हैं कि मेरा नुकसान बन्धनमें बँध जाता है, फिर उसीको कर्मफल भोगना किसीने नहीं किया है, नौ-मेंसे किसी कारणसे हुआ है। पड़ता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्की वाणी है— जब वह दिख जाता है, तब आप सोचते हैं—इसीने मेरा प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। नुकसान किया है। फिर उसपर आपको क्रोध आता है। अहङ्कारविमृढात्मा कर्ताहमिति दिखनेपर भी आपके विवेक एवं विश्वासके आधारपर यह सोचना है—इसने नुकसान नहीं किया है। भगवान् अर्थात् वास्तवमें सम्पूर्ण कर्म सब प्रकारसे प्रकृतिके श्रीरामको वनवास दिया माँ कैकेयीने, लेकिन रामजीके गुणोंद्वारा किये जाते हैं तो भी जिसका अन्त:करण किसी भी परिवारजनने माँ कैकेयीको दोषी नहीं माना। अहंकारसे मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी 'मैं कर्ता हूँ', स्वयं श्रीरामजीने 'काल, कर्म, विधि, भगवान्' को दोषी ऐसा मानता है। माना। सीताजीने 'दैव', कौसल्याजी एवं लक्ष्मणजीने इसको माननेके निम्न प्रभाव होंगे-आप कर्म-'कर्म', माँ सुमित्रा एवं भरतजीने 'विधि', दशरथजीने बन्धनसे मुक्त हो जायँगे। दूसरे आपसे अच्छा एवं खराब 'काल', वसिष्ठजीने 'होनहार एवं विधि' को दोषी व्यवहार करेंगे तो आप राग-द्वेषमें नहीं फँसेंगे। माना। श्रीरामचरितमानसमें आया है— (५) कोई आपका नुकसान नहीं करता पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी।। **है, दु:ख नहीं देता है**—कोई भी परिवारजन, रिश्तेदार, **है, दुःख नहीं देता है**—कोई भी परिवारजन, रिश्तेदार, भेटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु। Hinduism Discord Server https://dse.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha मित्र ने अपिका नुकसीन करता है, में आपका दुःख अब इस आधीन जगु काहु न देइअ दाषु॥

एक पलके सत्संगसे प्रभुप्राप्ति संख्या ४ ] देते हैं, वे तरने-तारनेवाले हो जाते हैं। एक बार नामका सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥ स्मरण करते ही अपार भवसागरके पार उतर जाते हैं। कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छित लाहू।। काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।। इस बातको माननेके निम्नलिखित प्रभाव होंगे-(रा॰च॰मा॰ २।२४४।८, २।२४४, २।६९।४, नाम-जपमें गहरी लगन हो जायगी, नाम-जप आपका जीवन बन जायगा, नामकी स्मृति बनी रहेगी, हृदय २।२८२।३, २।९२।४) पाँच भूलोंका वर्णन भी श्रीरामचरितमानसमें आया है— आनन्दसे भरा रहेगा। (७) विधान मंगलकारी—अपनी तरफसे बुद्धि कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं॥ और विवेककी सीमातक पूरी सावधानी रखनेके बाद भी मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजेहिं बहु सूला।। आपके जीवनमें जिस प्रतिकूल परिस्थितिका निर्माण हो छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥ जाता है, उसका नाम है-भगवान्का विधान। भगवान्का ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥ विधान सदैव हितकारी—मंगलकारी ही होता है। भगवान् उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा।। आपके सच्चे माता-पिता हैं। वे आपके अहितकी बात (रा०च०मा १।१०२।५, ७।१२१।२९, ४।११।४; सोच ही नहीं सकते, करेंगे कैसे ? उनके द्वारा भेजी गयी ७।११७।२, ७।५५।९) इस बातको माननेके निम्नलिखित प्रभाव होंगे-प्रतिकूलता तो उनके द्वारा किया जानेवाला ऑपरेशन है। आपको उस स्वजन—उस व्यक्तिपर भी क्रोध नहीं ऑपरेशनसे वे आपकी गन्दगीको बाहर निकालकर आयेगा, जो आपका नुकसान करेगा, आपको दु:ख आपको शुद्ध एवं नीरोग बनाते हैं। आपकी गन्दगी है, आपकी पाँच भूलें, जिनका विवेचन ऊपर बिन्दु-संख्या देगा। आप किसीको बुरा नहीं समझेंगे, किसीका बुरा पाँचमें किया गया है—पराधीनता, मोह आदि। प्रतिकूलता नहीं सोचेंगे, किसीका बुरा नहीं करेंगे। किसीसे कभी भी आपकी लड़ाई नहीं होगी। सबके प्रति प्रेम रहेगा। आपके दु:खका कारण नहीं है। आपकी पाँच भूलें ही आपको दु:ख देती हैं। भगवान् इनको मिटानेकी प्रेरणा (६) नाममें अनन्त शक्ति—भगवान्के नाममें अनन्त शक्ति है। नामकी अपार महिमा है। नामसे सब देते हैं। कुछ सम्भव है। श्रीरामचरितमानसमें आया है— इस बातको माननेके बाद आपको न तो प्रतिकूलताका भय लगेगा, न उसके आनेपर दु:ख होगा। भायँ कुभायँ अनख आलसहँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहँ॥ (८) महिमा—भगवान् सदैव हैं, सबके हैं, बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥ सबमें हैं, सर्वत्र हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, परम सुहृद बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥ जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥ हैं, पतितपावन हैं, करुणासागर हैं, मेरे सच्चे माता-पिता हैं। भगवानुकी इस महिमाको मानते ही आप निश्चिन्त, (रा०च०मा० १।२८।१, १।११९।३, २।२१७।४, निर्भय, निडर, निर्मल, निर्विकार, निर्मम, निष्काम, निर्वेर, २।१०१।३) भाव यह है-भगवानुका नाम कैसे ही लें, उससे निरभिमान हो जायँगे। दसों दिशाओंमें मंगल ही होगा। विवशतासे भी यदि इन सच्ची बातोंको माननेका प्रभाव होगा-परम कोई भगवानुका नाम ले ले तो उसके अनेक जन्मोंके शान्ति, जीवन्मुक्ति, भगवद्भक्ति, भगवत्प्रेम। यही मानव पाप जल जाते हैं। इस जगत्में जो एक बार 'राम' कह जीवनकी पूर्णता है।

भाग ८९ कहानी— समाजकी सेवा (श्री'चक्र') [8] रहा हूँ। सेवक ही रहना चाहता हूँ।' 'वहाँ आप अधिक सेवा कर सकेंगे।' यह तर्क भी वे विद्यापीठके स्नातक हैं। विद्यापीठकी शिक्षाकी सफलता ही है समाज-सेवामें। देश-सेवाकी प्रबल आया था। इसकी उपयोगिता और महत्ता वे न समझते प्रेरणाने ही इस संस्थाकी नींव रखी और देशके हों, ऐसा नहीं है; किंतु उनका निश्चय कभी ढीला नहीं स्वाधीनता-संग्राममें इसके शिक्षकों एवं छात्रोंने कितना पड़ा करता। उनका दृष्टिकोण भी महत्त्वपूर्ण है-बलिदान किया, यह तो देश भली प्रकार जानता ही है। 'जनताको अधिकारियोंसे भी अधिक उस सेवककी वे उस गौरवमयी संस्थाके स्नातक हैं। देश-सेवा उनका अपेक्षा है, जो उसके बीच रहकर उसकी सेवा करे।' स्वभावगत गुण होना ही चाहिये। 'जनताके बीच रहकर जनताकी सेवा।' यहाँसे वहाँ दौरा करने और व्याख्यान देनेको ही तो जन-सेवा दुबला-पतला साँवला शरीर, हँसता-सा गोल मुख, घुँघराले सँवारे केश, नेत्रोंपर चश्मा, कलाईमें बँधी कहा जाता है। समाजकी सेवाका दूसरा क्या रूप हो घड़ी, पैरोंमें चप्पल-दूध-सी उजली सफेद खादी तो सकता है ? यह रूप आवश्यक नहीं है, महत्त्वपूर्ण नहीं समाज-सेवकका पवित्र वस्त्र है। आप उन्हें एक बार है, यह कहेगा भी कौन। देख लें तो सहज ही भूल नहीं सकते। बड़ा मिलनसार 'जनताको, देशको आज नेता नहीं, अच्छे नागरिक स्वभाव है। बड़ी विलक्षण प्रतिभा है। वक्तुत्व-शक्तिकी चाहिये।' उन्होंने स्वयं भी अपने सम्मान्य नेताकी इस तो पूछिये ही मत। जिसमें वक्ता बननेकी योग्यता नहीं पुकारको कई बार दुहराया है। आज ही क्यों उनके मनमें होगी, वह समाजकी सेवा कैसे करेगा। वे तो साधारण यह आ रहा है—'तू भी तो नेता है ?''आपलोग सेवक बातचीतमें भी चुटिकयाँ लेते, उपदेश देते, व्याख्यानसे ही हैं या नेता?' एकने एक दिन पूछा था उनसे 'यह देते चलते हैं। सेवकका वेश है ? आप क्या सोचते हैं कि व्याख्यान देते घूमनेसे समाजकी सेवा हो जाती है?' बलिदान—देशके लिये बलिदानकी पुकार गूँजती थी उनके कानोंमें। आज नहीं गूँजती सो मैं नहीं कहता; 'हमारी सेवा साधारण घरेलू सेवकसे दूसरे प्रकारकी किंतु उस समय युग ही दूसरा था। लाठी, गोली, जेल— है ?' उस दिन उन्होंने हँसकर उत्तर दे दिया था—'हम विदेशी सरकार अपनी पूरी शक्तिसे दमनपर उतर आयी स्वच्छता, सावधानी, अनुशासन, विद्याका प्रचार करते थी। देशने चुनौती स्वीकार कर ली थी। वे उस समय हैं। स्वयं हम इन्हें न रखें तो लोग सीखेंगे कैसे? हम एक पूरे जिलेके आन्दोलनका नेतृत्व कर रहे थे। पूरे तीन जनताके विचारोंको जाग्रत् एवं परिमार्जित करते हैं। बार उन्हें जेल जाना पड़ा। कोई ऐसी कठिनाई नहीं, ठीक दिशा दिखाना और उधर चलनेकी प्रेरणा देना जिसे उन्होंने न उठाया हो। हमारा काम है। यही हमारी सेवा है। जन-जागरणसे आजकी बात अब दूसरी है। आज वे चाहते तो अधिक महत्त्वकी समाज-सेवा और क्या होगी?' किसी उच्च पदपर होते। मित्रोंने उनसे चुनावमें खड़े कोई उनसे बहस करके कहाँ पार पा सकता है। होनेका आग्रह भी किया था और सफलता तो निश्चित लोगोंके अटपटे तर्कोंका उत्तर देना तो उनकी सेवाका एक मुख्य अंग ही है, लेकिन बूढ़े महात्माजीने जो ही थी। वे प्रारम्भसे विचित्र स्वभावके रहे हैं। मित्रोंको

आत्मनिरीक्षण, आत्मशोधनकी प्रबल प्रेरणा दी थी-

उन्होंने दो ट्रक उत्तर दे दिया—'मैं शासक नहीं, सेवक

ंख्या ४] क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक		
—————————————————————————————————————	 'उनमें अनेक त्रुटियाँ हैं। वे बोलनेमें कुछ गर्दन	
कठिन है; किंतु उन्होंने उसे बड़ी गम्भीरतासे ग्रहण	एक ओर झुकाकर बोलते हैं, चलनेमें हाथ अधिक	
किया था। वह प्रेरणा ही उन्हें राजनीतिक क्षेत्रमें ले	हिलाते हैं। हाथ धोनेमेंरहने दीजिये त्रुटियों की	
आयी थी, यह कहना कुछ असंगत नहीं होगा। समाज–	बात। त्रुटियाँ किसमें नहीं होतीं; किंतु यह है क्या?	
सेवाको उन्होंने एक साधन माना था आत्मशुद्धिका। वे	उनकी त्रुटियाँ इतनी व्यापक क्यों होती जा रही हैं ? लोग	
देश-सेवा—जनता-जनार्दनकी सेवा करने आये थे। वह	त्रुटियोंमें उनकी ठीक-ठीक क्यों नकल करते हैं?'	
आत्मशोधनकी प्रेरणा उनके भीतर कभी मन्द भले पड़ी	'मैं क्या कर रहा हूँ ? मुझसे समाजकी कौन-सी	
हो, प्रसुप्त नहीं हुई और आज पता नहीं क्यों वह जग	सेवा हो रही है?' वे सिर पकड़कर बैठ गये हैं आज।	
पड़ी है।	'उनके उपदेशों, व्याख्यानोंका क्या प्रभाव? उन्होंने	
'व्याख्यान देनेसे ही समाजका कल्याण हो जायगा?	समाजको दोष—अपने दोष ही तो बाँटे। लोगोंने उनके	
यही समाज–सेवा है?' एक दिन ऐसे प्रश्नोंका वे	दोष-ही-दोष लिये!'	
हँसकर उत्तर देते थे। आज जब कोई प्रश्नकर्ता नहीं है,	व्यापक—व्यापक होते जा रहे हैं उनके दोष। जैसे	
आज जब सर्वत्र उनके स्वागतमें भीड़ जयध्विन करती,	सम्पूर्ण दिशाएँ, पूरा आकाश मैला, घिनौना होता जा रहा	
मालाएँ सजाये खड़ी रहती है, यह प्रश्न उनके मनमें	है उनके दोषोंसे। उन्होंने नेत्रोंपर हाथ रख लिये। कोई	
प्रबल क्यों होता जा रहा है ? उनके भीतर बैठकर कौन	वज्र-कर्कश स्वरमें पूछ रहा है उनसे—'तू समाजका	
उनसे इतने तीखे स्वरमें बार-बार पूछता है, इसका कोई	सेवक है ? समाजकी सेवा की है तूने ? यही है तेरी	
समाधान वे कर नहीं पाते।	समाज-सेवा ?'	
'हम स्वच्छता, सावधानी, अनुशासनका प्रचार	क्या उत्तर है उनके पास। उनके नेत्र आज इस	
करते हैं। हम स्वयं इन्हें न रखें तो लोग सीखेंगे कैसे।'	एकान्तमें टपाटप बूँदें गिराते जा रहे हैं।	
आज उनका यह स्वयंका उत्तर जैसे उनके मस्तिष्कमें	× × ×	
धधककर जल उठा है।	[۶]	
'कितनोंने हमारे व्याख्यानोंसे स्वच्छताकी शिक्षा	वह भी विद्यापीठका स्नातक है। बूढ़े महात्माजीकी	
ली ? कितनोंने सावधानी सीखी ? कितनोंने अनुशासनका	वाणीपर उसकी निष्ठा विद्यापीठमें प्रवेश करनेसे बहुत	
पालन करना अपनाया?' निराशासे सिर झुक गया	पहलेसे रही है। महात्माजीकी अहिंसा और आत्मशोधनकी	
उनका।	प्रेरणाने उसे भी बहुत आकर्षित किया। आत्मशुद्धिकी	
'स्वयंसेवक मेरे-जैसे बाल रखते हैं। मेरे समान	धुन उसकी बहुत पुरानी है।	
नंगे सिर रहते हैं। यही चप्पल पहनते हैं। यह घड़ी न	दुबला-पतला कुछ ललाई लिये गेंहुआँ गोरा	
सही—घड़ी बाँधते हैं।' उन्होंने कभी इस बातपर गर्व	शरीर, गम्भीर गोल मुख, घुटा सिर, बड़ी-सी चुटिया,	
किया था कि लोग रहन–सहनमें उनका अनुकरण करने	नंगे बिवाईभरे पैर, खादीका मटमैला कुर्ता, खूब मोटी	
लगे हैं। उनके-जैसी धोती पहनना, वैसा ही कुरता	कुछ मैली धोती—उसे विद्यापीठमें उसके सहपाठी सदा	
बनवाना, कुर्तेके ऊपरका बटन उन्हींके समान खुला	चिढ़ाते रहे हैं। अर्थशास्त्र और राजनीतिके बदले वह	
रखना—अब तो ग्रामोंके साधारण लोग भी कुछ बातोंमें	दर्शनशास्त्र और संस्कृतका छात्र था। चमड़ेकी चप्पलके	
उनका अनुकरण करते हैं।	स्थानपर लकड़ीकी चट्टियाँ पहनता था। उसकी चुटिया	

भाग ८९ और जनेऊका बड़ा उपहास हुआ, लेकिन बड़ा गम्भीर लेने पड़ते। पड़ोसियोंने यह झटपट अनुभव कर लिया है वह। बहुत कम हँसता है। जब धीरेसे तनिक-सा है। उसके गाँवके किसान अब रूई बोने लगे हैं। उसे हँसता है—जैसे मोती बिखर पड़े हों। उसकी गम्भीरता अब एक घण्टे रोज उन लोगोंको चर्खा चलाना सिखाना ऐसी है कि उसका उपहास करके उपहास करनेवाला पड़ता है, जो उसके पास बड़े आग्रहसे सीखने आते हैं। ही संकुचित हो उठता है। वह पूरे विद्यापीठ-जीवनमें कभी-कभी वह आसपासकी गलियाँ झाड़ देता वैसे-का-वैसा ही रहा आया था। उसकी एक मण्डली है। गाँवमें लोग पता नहीं; क्यों उसका सम्मान करने लगे बन गयी थी धीरे-धीरे। यह उसीकी गम्भीरताका प्रभाव हैं। सम्भवत: इसलिये कि नित्य सायंकाल वह पीपलके था कि विद्यापीठमें भी कुछ दिन कुछ छात्र बड़ी चुटिया नीचे बैठकर लोगोंको रामायण सुनाता है। लोगोंको रखने और सन्ध्या करने लगे थे। कहता है-'तुम अपने आप पढ़ो तो कितना आनन्द आये। यह तो रामजीकी कथा है।' बड़े-बूढ़े भी अब समाजकी सेवा आत्मशुद्धिका साधन है, यह बात उसे कुछ ठीक-ठीक जमी नहीं, लेकिन महात्माजीने उससे क, ख पढ़ते हैं। भोजनके बाद रात्रिमें उसकी देश-सेवा, समाज-सेवाकी प्रेरणा दी, वह प्रेरणा उसके पाठशाला लगती है। अब लोग इधर-उधर कूड़ा डालते हृदयमें भी बस गयी थी, लेकिन वह वक्ता नहीं है। वह डरने लगे हैं—'पॉंडे़जी यहाँ कूड़ा देखेंगे तो झाड़ लेकर तो साधारण बातचीतमें भी शब्दोंको इतना तौल-तौलकर जुट पड़ेंगे' उसका पूरा गाँव सदा स्वच्छ रहता है। मुखसे निकालता है, जैसे कोई बहुत बडी सम्पत्ति व्यय वह सबेरे एक मील जाकर गंगा-स्नान करता है। कर रहा हो। दस शब्दका काम चारमें चल सके तो वह सन्ध्या करता है। गीताका पाठ करता है। गाँवके युवक साढ़े चार बोलनेवाला नहीं। जो वक्ता नहीं, वह भला और बालक तो क्या तरुण और वृद्ध भी इस प्रयत्नमें नेता कैसे होगा और जो नेता नहीं, पुलिस उसके पीछे रहते हैं कि पाँडेजी कहीं स्नान करने पहले न निकल कभी क्यों पड़ेगी। देशके इतने महान् संघर्षमें भी उसकी जायँ। 'देखा-देखी पाप, देखा-देखी पुण्य' सो गाँवमें बात किसीने नहीं पूछी। वह जेल नहीं गया, उसे किसीने तो जैसे अब सभी गंगास्नान, सन्ध्या, पूजा करनेवाले हो एक धक्कातक नहीं दिया। आज जब चारों ओर धूम गये हैं। जो गीता-पाठ नहीं कर सकते वे रामायण या है, आज भी उसे कोई पूछनेवाला नहीं। वह कभी नेता हनुमानचालीसा ही लेकर शंकरजीको सुना आते हैं। तो था ही नहीं। स्त्रियोंकी चर्चा मत कीजिये, उनमें तो पहलेसे सृष्टिकर्ताने श्रद्धा बाँटते समय बड़ा भाग दे रखा है। अब तो गाँवके विद्यापीठसे वह अपने घर चला आया। घरपर खेतीके काममें जुट गया। वह कुट्टी काटता है, घास हलवाहेतक पहले स्नान करके सूर्यभगवान्को एक लोटा छीलता है, खेतमें खाद अपने सिरपर उठाकर ले जाता जल चढ़ाते हैं और तब मुँहमें दाना डालते हैं। है। विद्यापीठका स्नातक है वह, यह तो जाननेवाले जहाँ चार बर्तन होते हैं, वहाँ खनकते भी हैं। जानते हैं। एक उद्योगी किसान है वह, यह देखते ही गाँवमें झगड़े भी होते हैं। कचहरीकी बात बहुत दूर चली गयी। पाँडेजीके पास भी बहुत कम झगड़े आते समझा जा सकता है। हैं। बहुत-से झगड़ोंका निपटारा तो इतनेमें हो जाता दोपहर-विश्रामके समय वह चर्खा चलाता है। घरमें उसने चर्खे लाकर रख दिये हैं। अपने खेतमें उसने है—'चल, पाँड़ेजीके पास चलता हूँ।' 'भैया रहने दो! अब पाँड़ेजीके यहाँ ले जाकर क्यों थोड़ी रूई बोना प्रारम्भ कर लिया है। रूईमें अच्छी असिंहिक्षणं इक्षण्या विकारका केरिकारका किर्मा किर्मा किर्मा केरिकारकार किर्मा किर्मा

ख्या ४] समाजकी सेवा		
**************************************	**************************************	
क्यों पाँड़ेजीका गाँवमें इतना भय, इतना सम्मान,	यह हमारी रात्रिपाठशाला, पंचायत, अतिथिशाला और	
इतनी पूछ है, पाँड़ेजी भी नहीं जानते। वे न नेता हैं, न	जो भी सामूहिक काम आ पड़े—सबका स्थान है। हम	
वक्ता। वे तो बोलनेमें भी शब्दकी कृपणता करते हैं. उन्हें	सब अपने-अपने घरका काम करते हैं और घड़ी-दो-	
अपने घरके काम, अपनी पूजा-पाठसे अवकाश ही नहीं	घड़ी यहाँ भी आकर बैठते हैं। गाँवका काम तो एक	
कि समाजकी सेवा करें। यह रामायण सुनाना, लोगोंको	दूसरेकी सहायतासे सदासे ही चलता आया है।'	
दो अक्षर पढ़ा देना, किसीके झगड़े निपटा देना—यह तो	'कोई स्वयंसेवक नहीं, कोई नेता नहीं।' एक बार	
मनुष्यका कर्तव्य है। मनुष्य अपने पड़ोसीकी सहायता	उन्होंने चारों ओर देखा। अपने मनमें ही वे कह रहे	
नहीं करेगा तो क्या पशु आयेगा उसकी सहायता करने?	थे—'बापूकी बातका मर्म तो पाँड़ेने समझा, लगता है।	
× × ×	इतना स्वच्छ, इतना अनुशासित, इतना व्यवस्थित ग्राम	
[३]	तो मैं अबतक दूसरा नहीं देख सका हूँ।'	
'कितने स्वयंसेवक हैं आपके यहाँ?' उन्होंने	'यहाँके लोग आपकी ही नकल करते हैं ?' थोड़ी	
पूछा। आज इधर आनेपर उन्हें अपने विद्यापीठके	देर पीछे उन्होंने बात चलते हुए पूछ लिया था। वैसे	
सहपाठीका स्मरण हो आया था। वे मिलने चले आये	उनका मन कहता था—'पाँडे़की नकल पूरा देश करने	
थे। यह गाँव, यहाँकी स्वच्छता, यहाँके लोगोंकी तत्परता	लग जाय तो बापूका स्वप्न आज ही सत्य हो जाय।'	
देखकर वे चिकत रह गये थे। पूरा गाँव उनके स्वागतमें	'नहीं तो!' पाँड़ेने सिर हिला दिया। 'अच्छे काम	
जैसे खड़ा था, लेकिन वे यह जानते हैं कि उनके	लोग समझकर करें, यह कुछ नकल नहीं है। मेरी नकल	
आनेका किसीको पता नहीं था। उनका आना सहसा	भी कुछ होती है; पर बहुत थोड़ी। एकाध लोग ही मेरी	
हुआ है। उनके स्वागतके लिये यहाँ कोई तैयारी हुई हो,	भाँति घुटे-सिर रहते हैं। दो-चार ही मेरी भाँति गुमसुम	
ऐसा सम्भव नहीं है।	बने रहते हैं।'	
'हम सभी स्वयंसेवक ही हैं।' पाँडे़जीने छोटा–सा	पाँड़े क्या उत्तर देते हैं, इसके बदले उनका ध्यान	
उत्तर दिया। 'मेरा मतलब ऐसे स्वयंसेवकोंसे है, जो	लोगोंकी ओर अधिक था। उनके नेत्र चारों ओर घूम रहे	
बराबर यहीं रहते हों। आश्रमका काम करते हों।'	थे। जहाँ पहुँचना, वहाँकी अधिक–से–अधिक परिस्थितिको	
उन्होंने फिर पूछा।	समझ लेनेके वे पुराने अभ्यासी हैं। उनके नेत्रोंको छोटी-	
'ऐसा तो यहाँ कोई नहीं है।' पाँडे़जी इतना	छोटी बातोंके निरीक्षणका अभ्यास है। लेकिन यहाँ उन्हें	
कहकर चुप हो जानेवाले थे; किंतु उन्होंने देखा कि	आश्चर्य हो रहा है—'कोई पाँड़ेकी त्रुटियोंकी नकल	
उनकी बात इस प्रकार समझी नहीं जा सकेगी। उन्होंने	करता उन्हें नहीं लगता। पाँड़े चलनेमें आगे झुककर	
स्पष्ट किया—'यह आश्रम नहीं है, यह तो एक	चलते हैं, उनके कुर्तेकी दो-एक बटन टूटी ही रहती हैं,	
सज्जनने अपना खाली मकान पूरे गाँवको दे दिया है।	बोलते समय वे प्राय: अपने बायें हाथकी अँगुलियाँ	
अब आसपासके गाँवके लोग भी चर्खा चलाना सीखने	समेटकर मुट्ठी बना लेते हैं, लेकिन दूसरोंमें उन्हें तो कोई	
आने लगे हैं। कुछ लोग पढ़ने भी आते हैं। यहाँ यह	नहीं दीखता, जिसमें ये बातें आयी हों। लोग पाँड़ेको	
सुविधा है कि चर्खे रख दिये गये हैं। हममेंसे जिसे	कितना सम्मान देते हैं, यह तो वे देख रहे हैं; परंतु उनकी	
अवकाश मिलता है, यहीं आकर बैठता है। अपना सूत	त्रुटियाँ व्यापक नहीं हुईं, इसका कारण? यह कारण	
भी कातता है, सीखनेवालोंको सिखाता भी है। वैसे तो	उनकी समझमें आ नहीं रहा है।'	

भाग ८९ 'यहाँ और भी कुछ देखनेयोग्य है?' गाँव तो समाचारपत्रोंने छापे हों; किंतु उनकी एक-एक अंग-पाँडेने उन्हें दिखा ही दिया है। दो दिन यहाँ रहनेकी भंगी कह रही थी—'कितना गन्दा, कितना उलझनभरा उनकी इच्छा है। दिनभर कोई बैठे-बैठे ऊब जाय और काम है यह।' घूमना-फिरना चाहे, यह बहुत स्वाभाविक है। 'यहीं रख दो! साधुने कह दिया। उन्होंने गोबर 'एक मन्दिर है; किंतु दर्शन करनेका आपमें गिरा दिया; किंतु उनकी हथेलियाँ भर गयी थीं। वे हाथ उत्साह नहीं होगा, यह जानता हूँ। गाँवका साधारण-धोना चाहते थे।' इसी समय दूसरी आज्ञा मिली—'वह पुस्तक उठा लाओ और तनिक पोंछ दो उसे।' सा मन्दिर है।' पाँडेजीने कुछ सोचकर कहा—'थोडी दूर गंगा-किनारे एक अच्छे संतकी कुटी है।' 'मैं हाथ धो लूँ।' उन्होंने देख लिया था कि 'सन्ध्या-समय टहलना भी हो जायगा गंगा-किनारे पाँडेजी कुएँसे पानी ले आ रहे हैं। 'हाथ पीछे धो लेना।' साधुने कहा—'पहले और संतके दर्शन भी।' एक समाजसेवी विख्यात पुरुषमें साधुके दर्शनकी इच्छा होगी, यह पाँड़ेको अद्भुत लगा। पुस्तक साफ करके दे दो।' गाँववालोंको इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं जान पड़ी। 'महाराज! पुस्तकमें गोबर लग जायगा। वह वे ऐसे वातावरणमें रहते हैं कि वहाँ साधुके दर्शनकी एकदम गन्दी हो जायगी।' उन्हें लगा कि साधु बूटी इच्छा न होना ही आश्चर्यकी बात मानी जाती है। छानते होंगे। 'एक छोटी-सी पुस्तक उठाने और स्वच्छ करनेमें X तो तुम पहले अपने हाथकी ओर देखते हो और इतने [8] 'वह गैयाका गोबर उठा तो लाओ! एक अंजली बडे समाजके दोषको दुर करने चलते हो, समाजसेवामें तो होगा ही।' भारतके साधु ऐसे बेढंगे होते हैं कि बात लगते हो तो अपनी ओर देखते ही नहीं हो।' साधुने गम्भीरतासे कहा—'तुम्हारे हाथमें गोबर लगा है तो मत पूछिये। न जान न पहचान, एक दूध-सी उजली जिन-जिन पुस्तकोंको तुम छूओगे, वे मैली होती जायँगी। खादी पहने कोई भला आदमी दर्शन करने आया तो उसे तुम्हारे भीतर बुराई है तो तुम समाजमें अपना क्षेत्र जितना प्रणाम करके बैठते-न-बैठते गोबर उठा लानेकी आज्ञा बढाओगे, उसमें उतनी ही बुराई फैलाते चलोगे।' दे दी गयी! 'आप बैठिये!' पाँडेने उन्हें रोका और स्वयं उठने वे उस दिन साधुके पाससे गाँवमें आये और गाँवसे लगे। 'उन्हें ही जाने दो भाई! वह तो गायका पवित्र भी लौट आये हैं; किंतु उनके कानोंमें साधुके शब्द अब भी गूँजते हैं—'पहले अपने दोष दूर करो, तब समाजके गोबर है!' साधु महाराजने पाँडेको रोक दिया। 'हमें स्वच्छता करने और कूड़ा उठानेका अभ्यास दोष दूर करने चलो। जो निर्दोष नहीं, वह समाज-सेवा है।' वे हँसकर उठे। इतने ग्रामीण लोगोंके सामने करने जाकर समाजका अहित ही करेगा। समाजमें साधुकी बात न मानना उचित नहीं जान पड़ा। गायका अपनी बुराइयाँ बाँटेगा।' गीला गोबर था। कुर्तेको ऊपर चढ़ाकर किसी प्रकार मित्र कहते हैं- 'उन्होंने अपना मान खो दिया, उठा लिया उन्होंने उसे। हाथकी अंजली कपड़ेसे दूर लेकिन अब उनसे व्याख्यान नहीं दिये जाते। अब तो वे किये, बहुत सम्हलते हुए चले आये किसी प्रकार। भले एकान्तमें आ गये हैं। वे अपने भीतर देखनेमें लगे हैं उन्होंने ग्रामोंकी सफाईमें थोडा-बहुत भाग लिया हो, आजकल। वे समाजकी सेवामें अभी ही ठीक लग पाये भले टोकरी भरते और उठाते समयके उनके चित्र हैं ' यह बात क्या ठीक नहीं है ?

साधनोपयोगी पत्र (१) (२) आर्त-प्रार्थना करो जो कुछ है, सब भगवानुका है सम्मान्य महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका प्रिय भाई! सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे दु:खसे मुझे भी बड़ा दु:ख है। मैं चाहता हूँ, कृपापत्र प्राप्त हुआ। आपने जो लिखा, उसके उत्तरमें क्या लिखा जाय? मनुष्य यदि दूसरेके दु:खको अपना तुम दु:खसे मुक्त हो जाओ, परंतु यह मेरे हाथकी दु:ख मानने लगे तो जगत्का बहुत-सा दु:ख दूर हो बात नहीं है। तुम्हारे सद्भावके प्रति मेरे मनमें बड़ा जाय, परंतु इधर मनुष्यकी उदासीनता ही है, बल्कि आदर है, परंतु मैं तुम्हें यह विश्वास कभी नहीं आजके जगतुमें तो हम बहुत-से लोग दुसरेके दु:खको दिला सकता कि 'मैं ऐसा कोई चमत्कार कर दुँगा, अपना सुख बनाते हैं। यह बड़ी दयनीय स्थिति है! सच जिससे रातों-रात तुम्हारा संकट टल जायगा और तुम अपने मनोरथके अनुसार उच्च स्थितिको प्राप्त हो तो यह है कि मनुष्यके पास जो कुछ है, वह सारा-जाओगे।' कोई यदि किसीको ऐसा विश्वास दिलाता

साधनोपयोगी पत्र

का-सारा प्रभुका है और प्रभुकी सेवाके लिये है। उसे वह यदि अपना मानता है तो सचमुच बेईमान और चोर है कि 'मैं जादूकी तरह तुम्हारी स्थिति बदल दूँगा है। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट आया है कि 'जितनेसे पेट भरे, तो वह या तो स्वयं भ्रममें है या ठग है।' उतनेपर ही अपना अधिकार है। उससे अधिकपर अधिकार माननेवाला चोर है और उसे दण्ड मिलना क्षमता होती ही नहीं। होती है, पर वैसे पुरुष संसारमें चाहिये।' यह भागवतके सातवें स्कन्धमें नारदजीका वचन है। आपसे मेरा यही निवेदन है कि आपके पास

संख्या ४ ]

धन, बल, विद्या, बुद्धि—जो कुछ भी है, अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो उसे भगवान्का और भगवान्की सेवाके लिये ही मिला हुआ मानिये और उसे भगवान्की सेवामें ही समर्पित कर दीजिये। उसपरसे अपना अधिकार हटाकर उसे भगवान्का बना दीजिये तथा प्राणि-पदार्थोंपरसे अपनी ममता हटाकर ममता एकमात्र श्रीभगवान्में ही कीजिये, आपको अवश्य शान्ति मिलेगी। सांसारिक पदार्थोंमें न तो किसीको आजतक शान्ति मिली और न मिल सकती है—यह ध्रुव सत्य है। जितना ही सांसारिक वैभव बढेगा, उतनी ही चिन्ताकी ज्वाला बढेगी तथा आप उसमें झुलसते

रहियेगा। शान्ति-सुख केवल भगवच्चरणारविन्दमें ही है

और कहीं नहीं। उन्हींका आश्रय लीजिये और उन्हींमें

ममता कीजिये। इसके सिवा और कुछ भी शान्तिका

साधन नहीं है। शेष भगवत्कुपा।

इस समय बहुत थोड़े हैं और कोई हैं तो वे भगवान्के मंगलमय विधानको बदलनेका आग्रह नहीं करते। वे भगवानुके मंगलमय विधानमें विश्वास करते हैं और वे इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि यहाँका हानि-लाभ वास्तवमें हानि-लाभ है ही नहीं। वे महापुरुष जिस स्तरपर रहते हैं, उस स्तरसे यहाँके समस्त परिवर्तनोंमें उन्हें भगवान्की लीला-माधुरी दिखायी देती है। उसमें न दु:ख है, न शोक, न विनाश है, न हानि है—है केवल विविध विचित्र भंगिमाओंमें भगवान्का आत्मप्रकाश, उनका लीलाविलास। ऐसी अवस्थामें वे कौन-सी हानिको लाभमें परिवर्तित करने जायँगे। उनको तो प्रत्येक स्थितिमें भगवान्के मधुर पद-निक्षेपसे झंकृत मधुर नुपुरोंकी ध्वनि सुनायी देती है। अतएव उन

महापुरुषोंके द्वारा पारमार्थिक कल्याणके सिवा लौकिक

लाभकी आशा नहीं रखनी चाहिये। तुम स्वयं भी ऐसा ही कहा करते हो, परंतु तुम्हारा भी दोष क्या है। बुद्धिमें

अभीतक विषय-सुखका विश्वास बना हुआ है और

इसका यह तात्पर्य नहीं कि महात्मा पुरुषोंमें ऐसी

भाग ८९ हृदयमें मान-प्रतिष्ठा, नामकी इज्जत, शरीरके आराम कृपासे उसका हृदय ही विषय-कामनाकी गन्दगीसे शुद्ध और बहुत ऊँचे स्टाइलपर रहनेकी कामना प्रबल है। हो जा सकता है। अतएव भैया! तुम कातर हृदयसे इसीसे तुम जब अनुचित साधनोंसे भी संकट टालने और विश्वासपूर्वक आर्त-प्रार्थना करो। इससे अच्छी सलाह

ही है।

दृष्टिमें ऐसे कोई महात्मा ही हैं, जिनका नाम तुम्हें बता सकूँ या जिनसे तुम्हारे लिये मैं अनुरोध कर सकूँ। यह

सुख प्राप्त करनेकी बात सोचते हो, तब किसी महात्माके

द्वारा काम हो जाय तो बड़ा उत्तम है-यह सोचना स्वाभाविक ही है, परंतु न तो मैं महात्मा हूँ और न मेरी

मैंने तुमको स्पष्ट इसलिये लिखा है कि इस झूठी आशाके कारण तुमको दुखी न होना पड़े।

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जबतक मनुष्य संसारके प्राणि-पदार्थोंसे सुखकी आशा रखता है और

अकल्याण होगा तो हमारे चाहने और प्रार्थना करनेपर भी वे उस स्थितिकी प्राप्ति नहीं होने देंगे और वास्तवमें उसीमें हमारा कल्याण भी होगा। अनुकूल रूपसे उनकी प्राप्तिक लिये प्रयत्नशील रहता है,

तबतक उसे सुख-शान्ति मिल ही नहीं सकती। संसारमें संसारके पदार्थींको लेकर आजतक न तो कोई सुखी

हुआ है, न हो सकता है। तथापि जबतक यह सत्य मनुष्यकी समझमें नहीं आता, तबतक उसे अनुकूल

स्थितिकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना ही पड़ता है। परंतु कम-से-कम यह प्रयत्न ऐसा तो होना चाहिये, जो नयी दुर्गतिका कारण न बने। वह निर्दोष प्रयत्न है-एकनिष्ठ होकर भगवान्से प्रार्थना करना, जैसे द्रौपदी, गजराज

प्रार्थना करनेवालेकी दुर्गति होती ही नहीं, उसकी अभीष्ट सिद्धि भी सहज ही हो सकती है; अथवा भगवान्की

आदिने की थी। मेरी तुच्छ बुद्धिके अनुसार भगवान्से

आवरणचित्र-परिचय-[ श्रीभरतजीद्वारा श्रीरामचरणपादुकाओंका पूजन ]

राम पेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति। चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति॥ देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥ नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥

मानस-दु:खको देखकर कई बार मेरे चित्तमें बड़ी उद्घिग्नता हो जाती है, पर फिर जब मंगलमय भगवान्की

करनेवाला ही।

सहज सुहृदताका ध्यान आता है, तब यह जानकर सन्तोष हो जाता है कि वे तुम्हारा अमंगल तो होने देंगे ही नहीं, वे जो कुछ भी विधान करेंगे, वह

में और दे ही नहीं सकता; क्योंकि मुझे इससे अच्छे

किसी साधनकी न तो जानकारी है और न मेरा विश्वास

हैं, अतएव उनका प्रत्येक विधान भी मंगलमय है। यदि

वे समझेंगे कि अमुक स्थितिकी प्राप्ति होनेपर हमारा

यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान् मंगलमय

तुम्हारे संकटसे नहीं, परंतु तुम्हारे इस संकटजनित

प्रतिकूल दीखनेपर भी परिणाममें होगा तो मंगल घबराओ मत, प्रभुकी कृपापर विश्वास करो और

जहाँतक बने, असत्-पथका आश्रय न लेकर विपत्तिनाशके लिये भगवान्से आर्त-प्रार्थना करो। भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे। शेष भगवत्कृपा।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥

राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥ भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरित गुन बिमल बिभूती।।

बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥ नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति। मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥  व्रतोत्सव-पर्व

### व्रतोत्सव-पर्व

ξ ,,

9 ,,

6 11

9 ,,

संख्या ४ ]

द्वितीया " ९। ९ बजेतक बुध

तृतीया "८। ४७ बजेतक गुरु

चतुर्थी 🕖 ७। ५५ बजेतक 🛮 शुक्र 🖡

षष्ठी रात्रिशेष ४।५८ बजेतक

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष तिथि वार नक्षत्र दिनांक

५ मई

प्रतिपदा दिनमें ९।१ बजेतक मिंगल विशाखा दिनमें ११।१४ बजेतक

अनुराधा ''११।५९ बजेतक ज्येष्ठा 😗 १२। १५ बजेतक

मूल '' १२।१ बजेतक

पु० षा० ११ ११ । २३ बजेतक

पंचमी प्रात: ६। ३७ बजेतक | शनि | सप्तमी रात्रिमें २।५९ बजेतक रिव उ० षा० '' १०। २५ बजेतक श्रवण ११९। ९ बजेतक

१० 11

अष्टमी 🕠 १२।४७ बजेतक सोम नवमी 🦙 १०।२५ बजेतक मंगल धनिष्ठा 😗 ७।४० बजेतक दशमी रात्रिमें ७। ५७ बजेतक

११ ,, शतभिषा प्रातः ६। २ बजेतक

बुध

१२ ,,

१३ ,, पु०भा० रात्रिशेष ४।२२ बजेतक उ० भा० रात्रिमें २।४४ बजेतक १४ 🕠 रेवती 🗤 १।१३ बजेतक १५ ,,

एकादशी सायं ५। ३० बजेतक । गुरु द्वादशी दिनमें ३।७ बजेतक शुक्र अश्विनी '' ११।५३ बजेतक १६ ''

त्रयोदशी ग१२। ५४ बजेतक शिनि चतुर्दशी 🔑 १० ।५४ बजेतक | रवि | भरणी 💍 ११ । ५० बजेतक | १७ 🕠

अमावस्या ,, ९। १४ बजेतक सोम कृत्तिका 🙌 १०। ७ बजेतक

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष तिथि वार नक्षत्र १९ मई

प्रतिपदा दिनमें ७।५६ बजेतक मिंगल रोहिणी रात्रिमें ९।४८ बजेतक मृगशिरा 😗 ९। ५७ बजेतक आर्द्रा '' १०। ३६ बजेतक

द्वितीया '' ७।४ बजेतक बुध तृतीया प्रातः ६ । ४० बजेतक गुरु चतुर्थी 😗 ६। ४८ बजेतक शुक्र पुनर्वसु ११११ । ४५ बजेतक 22

पंचमी दिनमें ७। २७ बजेतक शनि पुष्य १११। २१ बजेतक आश्लेषा 🕶 ३ । २६ बजेतक षष्ठी 😗 ८।३४ बजेतक रिव

मघा अहोरात्र

अष्टमी ''११ । ५८ बजेतक मिंगल | मघा प्रात: ५ । ४८ बजेतक | २६ पू० फा० दिनमें ८।२२ बजेतक बुध

नवमी '' १। ५९ बजेतक

दशमी 😗 ४। ० बजेतक गुरु उ० फा० ११ ११।० बजेतक

हस्त "१।२९ बजेतक एकादशी सायं ५। ५१ बजेतक श्क्र

द्वादशी रात्रिमें ७। २३ बजेतक | शनि |

चतुर्दशी 😗 ९।१० बजेतक 🖼 मोम

पूर्णिमा ११९ । १८ बजेतक मिंगल

त्रयोदशी ११८।२९ बजेतक रिव

सप्तमी 🗤 १०।६ बजेतक सोम

दिनांक

चित्रा '' ३।४२ बजेतक |३०

स्वाती सायं ''५।३२ बजेतक |३१

विशाखा '' ६।५५ बजेतक

अनुराधा रात्रिमें ७।४७ बजेतक

२० ,,

२१ ,,

23 "

२४

२५

२७

२८

२९ ,,

१ जून

"

,,

,,

११। ५३ बजेतक।

करवीरव्रत।

१०।४७ बजेसे।

सोमवती अमावस्या। मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

सूर्य सायं ६। २५ बजे।

रात्रिमें १२।३ बजेसे।

श्रीकूर्म-जयन्ती।

प्रदोषव्रत।

मुल प्रातः ५। ४८ बजेतक।

कन्याराशि दिनमें ३।२ बजेसे।

भद्रा रात्रिशेष ४।५५ बजेसे, गंगादशहरा।

एकादशीव्रत (सबका), भीमसेनी एकादशीव्रत।

मिथुनराशि दिनमें ९।५३ बजेसे।

सिंहराशि रात्रिमें ३। २६ बजेसे।

वृषराशि रात्रिमें ४। ३९ बजेसे, श्राद्धकी अमावस्या, वटसावित्रीव्रत।

भद्रा सायं ६।४४ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, सायन मिथुनका

भद्रा दिनमें १०।६ बजेसे रात्रिमें ११।२ बजेतक, रोहिणीका सूर्य

**भद्रा** सायं ५।५१ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें २।३६ बजेसे, **निर्जला** 

**भद्रा** रात्रिमें ९।१० बजेसे, **वृश्चिकराशि** दिनमें १२।३४ बजेसे।

**भद्रा** दिनमें ९। १४ बजेतक, **पूर्णिमा, मूल** रात्रिमें ७। ४७ बजेसे।

भद्रा प्रातः ६। ४८ बजेतक, कर्कराशि सायं ५। २८ बजेसे।

मूल रात्रिमें १। २१ बजेसे, श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत।

अचला एकादशीव्रत (सबका), मूल रात्रिमें २। ४४ बजेसे। मेषराशि रात्रिमें १।१३ बजेसे, प्रदोषव्रत, वृष संक्रान्ति दिनमें १।४८ बजे, ग्रीष्म-ऋतु प्रारम्भ, पंचक समाप्त रात्रिमें १।१३ बजे। भद्रा दिनमें १२। ५४ बजेसे रात्रिमें ११। ५५ बजेतक, मूल रात्रिमें

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें ८।४७ बजेतक, धनुराशि दिनमें १२।१५ बजेसे, संकष्टी

भद्रा रात्रिमें ८।५८ बजेसे, मूल दिनमें ११।५९ बजेसे।

भद्रा रात्रिशेष ४।५८ बजेसे, मकरराशि सायं ५।८ बजेसे।

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। २९ बजे।

भद्रा दिनमें ३।५९ बजेतक, भानुसप्तमीपर्व।

**मृल** दिनमें १२।१ बजेतक।

**पंचकारम्भ** रात्रिमें ८। २५ बजे।

भद्रा दिनमें ९। १० बजेसे रात्रिमें ७। ५७ बजेतक, मीनराशि रात्रिमें

कुम्भराशि रात्रिमें ८। २५ बजेसे, कृत्तिकाका सूर्य रात्रिमें २।४० बजे,

४४ िभाग ८९

# कृपानुभूति

### 'रक्षा करी बिहारी ने...'

घटना लगभग चालीस वर्ष पूर्वकी है। मेरे पूज्य गया है और रात्रिका समय है, आप लोग मेरे घर चलकर पिताजी स्वभावत: बहुत ही सरल प्रकृति एवं धर्मानुरागी

थे। उनके इष्ट परमब्रह्म श्रीकृष्ण एवं श्रीश्रीराधाजी थे। वृन्दावनधामके प्रति उनका विशेष लगाव था। एक बार वे

अपने घर किशनगंज-बिहारसे वृन्दावन जानेके क्रममें बनारस अपने रिश्तेदारके घर पहुँचे, वहाँ उनकी अपनी

पुत्री (मेरी दीदी), जो कि अपनी ननदके घर आयी हुईं थीं, से भेंट हो गयी तो दीदीकी ननदने पिताजीके सामने

प्रस्ताव रखा कि आप अपने साथ अपनी पुत्री एवं दो नितिनयोंको भी वृन्दावनधामका दर्शन करा दें; क्योंकि ऐसे

इन लोगोंका जाना शायद ही कभी हो पायेगा। पिताजीने अपनी सहर्ष सहमित दे दी। दूसरे दिन दीदी अपनी दोनों पुत्रियोंको जो उस समय पाँच से सात वर्षकी रही होगीं, के साथ वृन्दावनके लिये खाना हो गयीं।

सन्ध्याके समय वृन्दावन पहुँचकर वे लोग स्टेशनसे रिक्शेद्वारा किसी धर्मशालामें रुकनेके लिये जा रहे थे कि सामनेकी ओरसे तेज गतिसे आता हुआ एक ट्रक उनके रिक्शेको ठोकर मारता हुआ चला गया। ट्रकके धक्केसे

क्षतिग्रस्त रिक्शा एवं रिक्शाचालक दूर फेँका गया तथा सड़कके एक ओर दीदी अपनी दोनों बच्चियोंके साथ पड़ी थीं तो दूसरी ओर पिताजी गिरे पड़े थे। पिताजीको गिरते वक्त घुटनेमें शायद कोई कंकड़ चुभ गया था, जिससे उनका

घुटना लहुलुहान हो गया था। दीदीने अपनी दोनों बच्चियोंको झाड-पोंछकर गोदमें उठाया और पिताजीके पास आकर उनकी स्थितिको देखकर वे बहुत घबरा गयीं और मन-ही-मन बाँकेबिहारीसे प्रार्थना करने लगीं कि हे प्रभु! अनजान

आते ही एक रिक्शा रोककर पिताजीको सहारा देकर रिक्शेमें

जगह एवं इस विकट स्थितिमें हमलोगोंकी सहायता करो।

बैठाया, उसके बाद दीदी भी अपनी दोनों बच्चियोंके साथ रिक्शेमें सामानके साथ बैठ गयीं। उस युवकने सर्वप्रथम

दीदीसे कहा कि चाचाजी जख्मी हैं तथा इन्हें बुखार भी हो

आराम कीजिये, सुबह ठीक होनेपर चले जाइयेगा। सहमति पाकर वह युवक उन लोगोंको अपने घरपर ले गया। अपने घर पहुँचनेपर उसने सारा वृतान्त अपनी पत्नी एवं माता-

पिताको बताया। उस लड़केने अपना कमरा मेरे पिताजी एवं दीदी तथा बच्चोंके लिये छोड दिया तथा खुद पत्नी, बच्चोंके साथ बरामदेमें सोनेकी व्यवस्था की। उसकी माताजीने घरका

द्ध एवं खाना परोस दिया। मेरे पिताजीको बुखार चढ़ गया था। इसलिये दीदीने उनके सिरमें जल-पट्टी देना शुरू किया, ताकि बुखार कम हो जाय। अर्धरात्रिके पश्चात् उस कमरेमें दीदीको भौंरेके

गुंजनकी आवाज सुनायी देने लगी, पर इधर-उधर देखनेपर भौंरा कहीं भी दिखा नहीं, अचानक उसी गुंजनसे स्पष्टरूपसे

एक आवाज आयी कि तुम्हारे पिताजीका एक ग्रह कट चुका है तथा एक और घटित होनेवाला है, उसके बाद सब ठीक होगा। प्रात:काल पिताजीका बुखार उतर गया था, इसलिये पिताजीने उन लोगोंको धन्यवाद देकर किसी धर्मशालामें

ठहरनेके लिये प्रस्थान किया। पुन: दूसरे दिन पिताजी और दीदी बच्चोंके साथ बरसाना, गोकुलके लिये खाना हुए। सफरके क्रममें बस एक पड़ावपर रुकी तो पिताजी बससे उतरकर लघुशंकाको गये तथा वापस आकर वहीं ट्यूबवेलमें

हाथ धोने लगे। तत्क्षण पता नहीं कहाँसे एक साँड दौड़ता हुआ आया और अपनी सींगोंसे पिताजीको पटकता हुआ चला गया। संयोगसे पिताजीको कोई गम्भीर चोट नहीं आयी सिर्फ कीचडमें गिरनेके कारण उनकी धोती एवं कमीज गन्दी हो गयी, जिसे अन्य यात्रियोंने पानीसे साफ कर दिया। इस घटनाके तीस वर्षोंके बाद पिताजीका गोलोक-

वास हुआ। इस घटनाकी चर्चा पिताजी हमेशा करते-रहते

जय।

जय॥

—विष्णुप्रसाद गुप्त

थे एवं उनकी इच्छा थी कि कल्याणमें इसका प्रकाशन हो। शास्त्रोंमें ठीक ही कहा गया है कि परमिपता अपने आश्रित भक्तोंकी रक्षा बड़ी तत्परतासे करते हैं। बिहारीलाल बृन्दाबन

श्री श्री राधारानी

तत्क्षण विपरीत दिशासे साइकिलसे एक युवक आया, उसने पिताजीको एक क्लीनिकमें ले जाकर मरहम-पट्टी कराया तथा दवाई, इन्जेक्शन वगैरह भी दिलवाया तथा पिताजी एवं

पढो, समझो और करो संख्या ४ ] पढ़ो, समझो और करो तथा उन्होंने मेरी सारी बात अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक सुनी। (१) एक मुसलिम बन्धुकी मानवीयता वकील साहबने भी अपने श्वसुरजीसे मेरी बेटीके रुड़की-हमारे देशमें प्राय: धर्म, भाषा, जाति आदिके नामपर स्थानान्तरणके सम्बन्धमें विशेष प्रयास करनेके लिये कहा: झगडे एवं विवाद होते रहते हैं। उस समय हमारे मनमें क्योंकि वकील साहबके श्वसुरजीके रुड़की कॉलेज के यह प्रश्न उठता है कि यदि हम इस प्रकारकी संकीर्ण रजिस्ट्रारसे काफी घनिष्ठ सम्बन्ध थे। उन्होंने मुझे यह मानसिकतासे ऊपर उठकर केवल इंसानियतको महत्त्व कहकर पूरी तरहसे आश्वस्त किया कि आपकी बेटी मेरी दें तो ये झगडे एवं विवाद कभी न हों। वास्तवमें इंसानियत बेटी-जैसी है। आप बिलकुल निश्चिन्त होकर हरिद्वार ही वह भावना है, जो मानवको तथा समाजके विभिन्न जाइये। आपकी परिस्थितिसे मुझे पूरी तरह सहानुभूति है। वर्गोंको परस्पर भाईचारेकी भावनासे जोडती है। उनके इन सान्त्वनापूर्ण शब्दोंसे आश्वस्त होकर मैं हरिद्वार मेरे जीवनकी भी एक स्मरणीय घटना है, जो मानवीय वापस आ गयी। खुरजासे चलते समय वकीलसाहबने भी भावनाको उजागर करती है। उन सज्जनके प्रति मैं अत्यन्त मुझे विश्वास दिलाया कि अब आपका कार्य अवश्य हो कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरी परेशानीके समय मेरी सहायता की जायगा। थी। यह बात सन् १९९०-९१ ई० की है, मैं BHEL सच मानिये, अगले १५-२० दिनोंमें मेरी बेटीका हरिद्वारमें सर्विस कर रही थी। मेरी पुत्रीका B.Ed. के लिये रुडकी ट्रॉन्सफरके लिये आर्डर आ गया तथा मेरी बेटीने खुरजामें सेलेक्शन हो गया था। मुझे उसके एडिमशनके भी हरिद्वार आकर रुड़की कॉलेज ज्वाइन कर लिया। लिये अकेले बेटीके साथ खुरजा जाना पड़ा। मेरे लिये इस प्रकार उन वकील साहब तथा उनके श्वसुरकी खुरजा बिलकुल अनजाना शहर था। खुरजा पहुँचकर सहायतासे मेरी चिन्ता दूर हुई। आज भी जब मैं याद करती हूँ तो उनके सहानुभूतिपूर्ण शब्द मेरी स्मृतिमें तैरने

मुझे मालूम हुआ कि बी०एच०ई०एल० की ही दो और लडिकयोंका यहाँ एडिमशन हुआ है। अतः मैं हरिद्वार वापस आनेपर उन बच्चियोंके माता-पितासे मिली। मुझे इस बातकी विशेष ख़ुशी थी कि मेरी बेटीको वहाँ अकेले नहीं रहना पडेगा। उनसे मालूम हुआ कि उन लडिकयोंके माता-पिताने रहनेके लिये एक कमरेके मकानका प्रबन्ध कर दिया है, जो उन्हींके किसी परिचितका मकान था। मैंने अपनी पुत्रीके लिये उन्हीं लड़िकयोंके साथ रहनेकी

व्यवस्था कर दी। तीनों लड़िकयोंके एक साथ रहनेसे मैं

भी बेफिक्र हो गयी, परंतु दो महीनेमें ही मुझे विदित हुआ कि उन बच्चियोंके पिताने अपने किसी सोर्सद्वारा उनका खुरजासे रुडकी ट्रॉन्सफर करवा लिया है तथा वे दोनों लड़िकयाँ शीघ्र ही रुड़की कॉलेज ज्वाइन कर लेगीं। मैं यह जानकर अत्यन्त चिन्तामें पड़ गयी कि मेरी बेटी वहाँ अकेली कमरेमें किस प्रकार रहेगी। मैं दोनों लडिकयोंके पितासे मिली। उन्होंने मुझे खुरजाके एक मुसलिम परिवारसे मिलनेकी सलाह दी। मैं खुरजा जाकर उन सज्जनसे. जो

(२)

हो जाय।—आशा भटनागर

वह अविस्मरणीय सदाशयता

घटनाको घटे लगभग चौंतीस साल बीत गये, पर सरदारजीकी वह सदाशयता आज भी मेरे मानस-पटलसे

नहीं उतरती। उस समय मेरी स्थिति उस व्यक्तिके समान

लगते हैं। उसके बाद मेरा खुरजा कभी जाना नहीं हुआ,

न कभी उन सज्जनसे मिलना हुआ, परंतु मैं सदैव उनके

प्रति आभारी रहुँगी। वास्तवमें यदि इंसान जाति, धर्म एवं भाषाके भेद-भावकी संकीर्ण मानसिकतासे ऊपर उठकर

मानवताको ही सर्वोपरि समझे तो यह धरती स्वर्ग-जैसी

थी, जो प्याससे अत्यन्त आकुल होकर भी जिस-तिससे दो घूँट जलकी याचना करनेमें भी संकुचित हो रहा हो और अचानक कोई अपरिचित आकर शीतल जल

लाकर कहे—'महाशय! यह शीतल जल ग्रहण करें।' यह वह समय था, जब मैं अपने पुत्रको आर्ट्स कॉलेजमें

पेशेसे वकील थे, मिली तथा उनको अपनी समस्या बतायी, प्रवेश दिलाने अपने गाँवसे ३०० किलोमीटर दूर चण्डीगढ़ उन्होंने मुझे एवं मेरी बेटीको अपने श्वसुरजीसे मिलवाया गया था। कॉलेज-कार्यालयमें पहँचकर आवश्यक कागजात

भाग ८९ कल्याण \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* अधिकारी महोदयके सम्मुख पेश किये। कुछ देर उन पहले कि मैं उनसे कुछ पूछूँ, उनके सुपुत्रने कॉलेज-प्रिंसिपलकी कागजोंपर दृष्टि घुमाकर वे बोले—'उम्मीदवारका फोटो ?' मुहर उनके हाथमें थमा दी। कहिये, कहाँ क्या प्रमाणित मैंने बच्चेका फोटो दिया, जिसे देखते ही अधिकारी करना है ? मैंने उनकी सदाशयताका अत्यन्त उदार रूप देखकर महोदय बोले—'पर यह प्रमाणित नहीं है। इसे प्रमाणित अपनी आयका विवरण उनके सामने संकोच और असीमित कराइये और वह भी किसी सक्षम अधिकारीसे।' उस आभार प्रकट करते हुए रख दिया। 'आई अटैस्ट दि...' अपरिचित स्थानमें मैं अपना परिचित सक्षम अधिकारी सरदारजी लिख रहे थे और मैं सोच रहा था—एक नितान्त कहाँसे लाता? अत: मैंने उन्हीं अधिकारीसे अपनी अपरिचितके जोखिमभरे कागजको प्रमाणित करनेवाले ये लाचारी जताते हुए फोटोको प्रमाणित करनेकी विनती कितने महान् और नेक इंसान हैं। सरदारजीकी यह सदाशयता की और कहा—फोटो और अभ्यर्थी आपके सामने हैं, क्या कभी भूली जा सकती है ?—महावीरप्रसाद अग्रवाल पर उन्होंने स्पष्टत: अपनी विवशता जताते हुए फोटोको पश्-पक्षी भी समझते हैं प्रेमकी भाषा प्रमाणित करनेसे साफ मना कर दिया। मेरे मित्र बिरजुके पास एक तोता था। बिरजु और हम दोनों बडे परेशान! करें तो क्या करें ? प्रवेशका आज अन्तिम दिन, घर जाकर फोटो प्रमाणित करानेका बिरजूकी माँको समय काटनेका एक अच्छा साधन मिल गया, पहले तो वह गली-मोहल्ले-मन्दिरका एकाध समय भी नहीं। दैवयोगसे उसी समय एक सरदारजी अपने पुत्रको प्रवेश दिलाने वहीं आये हुए थे। वे यह चक्कर लगा लिया करती थी, किंतु तोतेके आनेके बाद उसका सारा समय तोतेके पास ही व्यतीत होने लगा। देख रहे थे। वे किसी कॉलेजके प्रिंसिपल थे। उन्होंने हमारी हालत समझी और उसी समय बच्चेकी फोटो वह नियमसे पुराने टूथ-ब्रशसे पिंजरेकी सफाई करती। तोतेको दुलराती, उससे बातें करती और उसको गीत प्रमाणित कर दी। उनके अत्यन्त उदारभावके प्रति मैंने कृतज्ञता प्रकट की और प्रवेश-फार्म यह कहते हुए सुनाया करती। वह उसकी कटोरीको साफ करके उसमें ताजा जल भरती। दूसरी कटोरीमें भीगी चनेकी दाल, हरी प्रस्तुत कर दिया कि 'अब तो ठीक है न?' अधिकारी महोदयने मुझसे कहा—यह तो ठीक है, मिर्च, अमरूद, चीकुके टुकड़े रखती थी। वह दोपहरको परंतु आप तो सर्विस करते हैं न? भोजनोपरान्त दरी बिछाकर लेट जाती। तोता उसके पेट, 'जी!' छातीपर बैठकर टें-टें करके उसके प्यारका जवाब देता। 'तो आप अपनी आयका प्रमाणित प्रमाणपत्र भी दिन गुजरते गये। रविके रथका पहिया घूमता रहा। दीजिये'-यह सुनकर तो मेरे पैर तलेकी जमीन ही जीवनकी डोरको काले-सफेद चुहे कृतरते रहे और खिसक गयी। एकदम निराश स्वरमें आह निकली— बुढिया एक दिन गोलोकधाम सिधार गयी। 'अब क्या होगा?' व्यक्तिको सामने देखकर तो फोटोको बुढ़ियाको अपने पास न देखकर तोतेने आसमान प्रमाणित करना इतना कठिन या जोखिमभरा काम नहीं, सिरपर उठा लिया। जब लोग अर्थी लेकर घरसे निकले पर किसी अपरिचितकी आयको कोई कैसे प्रमाणित तो तोता पिंजरेकी तीलियोंसे सिर टकरा-टकराकर इधर-करे ? मैं हतप्रभ! अधिकारी महोदयको अपनी विवशता उधर तडफडाने लगा। घरकी शान्तिके साथ तोता मौन समझानेका भरसक प्रयास किया, किंतु सब निरर्थक! हो गया। तीसरे पहर जब बिरजूकी पत्नीने उसका पिंजरा वे प्रिंसिपल महोदय यह सब देख रहे थे, बोले-साफ करके उसमें ताजा पानी भरा, दाल-फल रखे तो 'हुण की होया?' अब मैं कैसे कहता कि मेरी आयका तोतेने उनकी ओर देखातक नहीं। दूसरे दिन बिरजूकी प्रमाण-पत्र चाहिये। उनके आग्रहपर मैंने अपनी स्थिति पत्नीने पिंजरेमें झाँका तो तोतेके प्राणपखेरू उड़ चुके थे। कटोरियोंका सारा सामान ज्यों-का-त्यों रखा था। स्पष्ट की। सरदारजीने तत्काल अपने पुत्रसे कहा—'ओ ए! सारे पश्-पक्षी, वृक्ष आदि भी प्रेमके भावको बखूबी कढ मेरी तलवार!' मैं तो 'तलवार' सुनकर डर गया— समझते हैं। प्रेमको जीवन, परमात्मा, कामधेनु आदि कहा · <del>ddindhisna Diago</del>rdaacayer bttps://gsc.gg/dharmaaali 数条DATANAHAHLHLQX在RAY Awinaadash संख्या ४] पढो, समझो और करो तो प्रेमके स्पन्दनोंसे एक कँटीले वृक्षको कंटकहीन बना जीनेमें या दूसरोंके लिये कुछ कर गुजरनेपर एक आत्मिक दिया था, वह पौधेके पास बैठकर उससे कहता प्यारे बच्चे, सुखानुभूति होती है, जिसे सिर्फ महसूस किया जा सकता तुम्हें कुछ भी भय नहीं है। तुम्हें रक्षाके लिये काँटोंकी है। शब्दोंद्वारा उसको व्यक्त नहीं किया जा सकता। आवश्यकता नहीं है। तुम बेफिक्र रहो, मैं तुम्हारी रक्षा बात साठके दशककी है। तब मैंने आठ या दस करूँगा, धीरे-धीरे वह रेगिस्तानी पौधा पूर्णत: कंटकहीन हो कक्षा पास की होगी। हम छुट्टियोंमें अपने तायाजीके घर जाते थे। संयुक्त परिवारकी गरिमासे परिपूर्णता नजर गया। चैतन्य महाप्रभुका नृत्य-गायन सुनकर वनके पेड़-पौधे जंगली पशुतक झूमने लगते थे। आती थी। वहाँपर मैं मुन्नी बुआ और बसन्ती बुआको हर समय काममें लगे देखती थी। दरअसल ये हमारे —गोपालकृष्ण जिन्दल दादाजीके गाँवकी थीं और दादाजीने उन्हें अपनी बेटी (8) कहानी ईमानदारीकी बना लिया था। बसन्ती बुआ सिलाई करती रहती थी, यह बात सन् १९८४ ई० की है। मेरे साथ दस मित्र कभी पेटीकोट तो कभी फ्रॉक। मुन्नी बुआ गेहँ साफ माँ वैष्णो देवीके दर्शनके लिये कटरा पहुँचे। कटरामें करतीं, बड़ी-पापड़ बनातीं और आमका खट्टा-मीठा धर्मशालातक सभीका सामान पहुँचानेके लिये पिट्ठ (सामान अचार डालतीं। पर इन सब कामोंको करते-करते कभी भी थकान या खीझकी रेखा उनके चेहरेपर नहीं दिखती ढोनेवाले कुली)-से बात करके पैसा तय किया गया। सभी ११ यात्रियोंका सामान धर्मशालापर आ गया। थी। दोनों ही गाँवके स्कूलमें शिक्षिका थीं, सो छुट्टियोंमें अब पिट्ठकी ईमानदारी देखनेका समय था। पिट्ठुने आकर सारा काम अपने कन्धोंपर ले लेती थीं। आर्थिक कहा कि मुझे आपलोगोंके बीच ५०० रुपये किसीके तंगीके कारण कभी राजगिरके लड्डू या रस्कके पैकेट गिरे हुए मिले हैं। कृपया आप लोग आपसमें पूछताछ लाकर, हम बच्चोंको बड़े प्यारसे देती थीं। करके पता लगायें कि वे किसके हैं? पता लगनेपर शादी-ब्याहके सारी रीति-रिवाजोंको करानेके साथ जिसके थे, वापस किये गये। मेरे साथीको खुशी हुई ही सारी जिम्मेदारीका बोझ अपने कन्धोंपर उठाकर तथा अपनी खुशीसे १०० रुपये ईनामके रूपमें देनेके बखूबी कामको सुखद अंजामतक देतीं। सबको अपना लिये कहा। पिट्टने कहा मैं १०० रुपये नहीं लूँगा। मुझे बनाकर उनके छोटे-छोटे कामोंकी प्रशंसा करनेकी मातारानी मेहनतेका पैसा बहुत देती हैं। आपलोगोंकी आदत जो उन दोनोंमें थी, बहुत कम देखनेको मिलती सेवा ईमानदारीसे करता रहूँ, मुझे बस, यही चाहिये। है। वे सदा हरे या नीले किनारेकी सफेद साड़ी पहनती किसीने सच ही कहा है कि 'नीयत हो नेक थीं और उनके सिरपर आँचल हमेशा चिपका रहता; और मीठी हो जुबां भी, ऐसेमें इबादतकी जरूरत मानो फेविकोलसे चिपका दिया गया हो। पर उस नहीं होती।'-सन्तकुमार मिश्र सादगीमें एक सौम्यता हमेशा झलकती थी। कोई अपने शाही पहनावे एवं रहन-सहनके कारण मेरु नहीं हो (4) जाता, बल्कि अपने गुणोंसे ही वह महान् बनता है। सच मनका रिश्ता पर+उपकार अर्थात् दूसरोंके लिये नि:स्वार्थ भावसे तो यह है कि जहाँ अपनापन महसूस होता है, वहाँ किया गया कार्य। पर आजके भागते-दौड़ते मशीनी उत्साह अपने-आप ही आ जाता है। उन दोनों मुँहबोली युगमें ये बड़ी बेमानी-सी बात लगती है। आजके व्यस्त बुआओंने सगी बुआसे ज्यादा अपनापन दिया। वास्तवमें जीवनमें स्वयंके साथ ही परिवारकी जिम्मेदारी ही निभा रिश्ता सिर्फ खूनका ही नहीं, मनका भी रिश्ता होता है। मन जिसे अपना मान ले, वह अपना हो जाता है। लेना बडी बात है। तब परोपकारके लिये किसके पास समय है। साथ ही इस तरहके कार्योंको 'मिडिल दादाजीने उन्हें बेटी माना और उन्होंने हमें भतीजियाँ। क्लॉसकी दिकयानूसी' का नाम दिया जायगा। हर-एकका अपनी जानसे ज्यादा ध्यान रखकर उन्होंने अपने लिये तो सभी जीते हैं, पर कभी दूसरोंके इस रिश्तेको कभी कलंकित नहीं होने दिया।—अपराजिता

मनन करने योग्य [ सत्संगका प्रसाद ]

#### बीसवीं शताब्दीकी घटना है। एक बड़े शहरमें नहीं होता। तुम अभी नवयुवक हो। तुम कुछ दिनोंतक

एक बड़े प्रतिष्ठित धनी निवास करते थे। उनके चित्तमें बडा वैराग्य था, भगवानुके भजनमें बडी रुचि थी। वे

सोचते रहते थे कि कब वह अवसर मिलेगा, जब सबकी चिन्ता छोडकर मैं भजनमें ही लग जाऊँगा। उनके संतान

नहीं थी। एक भतीजा था, जिसके पढ़ाने-लिखानेकी जिम्मेदारी सेठजीपर ही थी। वे उसको योग्य बनाकर भजनमें लगना चाहते थे।

कुछ दिनोंमें पढ-लिखकर सेठजीका भतीजा योग्य हो गया। सेठजीने व्यापारका सारा काम-काज उसे

सँभला दिया और अपना विचार प्रकट किया कि मैं तो अब व्रजमें रहकर भगवान्का ही भजन करूँगा। भतीजेने पूछा—'चाचाजी! इस घरमें, व्यापारमें, रुपयेमें और

भोगोंमें जो आनन्द है, भजनमें उससे अधिक आनन्द है क्या?' चाचाजीने कहा—'इसमें क्या सन्देह है, बेटा! हमारा व्यापार, भोग और सुख तो अत्यन्त अल्प है।

संसारके त्रैकालिक सुखोंको और मोक्ष-सुखको भी यदि एकत्र करके एक पलड़ेपर रखा जाय और दूसरे पलड़ेपर भजनका लेशमात्रका सुख रखा जाय, तो भी वह लेशमात्र सुख ही अधिक होगा और तो क्या कहूँ, बेटा!

भजनमें जो दु:ख होता है, वह भी संसारके सब सुखोंसे श्रेष्ठ है।' भतीजेने पूछा—'चाचा! जब भजन में इतना सुख है, तब मुझे इस दु:खरूप व्यापारमें लगाकर आप

अकेले क्यों उस सुखका उपभोग करने जा रहे हैं ? जिसे आप दु:ख समझते हैं, उसमें मुझे डाल रहे हैं और आप सुखमें जा रहे हैं। भला, यह कहाँका न्याय है? मैं भी आपके साथ चल्ँगा।' चाचाजीने कहा—'बेटा! मैं तो

चाहता हूँ कि संसारके सभी लोग भगवान्में लग जायँ। मुझे कई बार इस बातका दु:ख भी होता है कि लोग

ऐसा सुखमय भजन छोड़कर प्रपंचोंमें क्यों फँसते हैं,

परंतु संसारका अनुभव किये बिना इसके दु:खोंका ज्ञान

संसारके व्यवहारोंमें रहकर इसके सुख-दु:खोंको देख लो, फिर तुम्हारी रुचि हो तो भजनमें लग जाना।'

भतीजेने कहा—'चाचाजी! आपकी बात मुझे जँचती नहीं है। में सोचता हूँ कि जिस व्यापार आदिमें लगे रहकर आपने अपनी इतनी आयु बितायी है, उसका अनुभव आपसे अधिक मुझे कब होगा। जब आपका अनुभव इतना प्रत्यक्ष है, मेरी आँखोंके सामने है, तब

फिर उसका अनुभव प्राप्त करनेके लिये इतना सुखद भजन छोड देना कहाँतक उचित है ? इसलिये मैं भजनके लिये अवश्य चल्ँगा। आप साथ न रखेंगे तो मैं अकेला ही चला जाऊँगा।' भतीजेका दृढ़ निश्चय देखकर सेठजीको प्रसन्नता

िभाग ८९

हुई। अपनी सारी सम्पत्तिका उन्होंने ट्रस्ट बना दिया, जिससे दीन-दुखियोंकी सेवा हुआ करे। दोनोंने समस्त वस्तुओंका त्याग करके व्रजकी यात्रा की। रास्तेमें चाचाजीने अपने भतीजेसे बातचीत करते हुए कहा-

'बेटा! ऐसी बात नहीं है कि घरमें भगवान्का भजन हो ही नहीं सकता, हो तो सकता है, होता है। मेरे सामने संसारके व्यवहार, व्यापारमें बहुत बड़ी कठिनाई थी। आजकल व्यापारकी प्रणाली इतनी कलुषित, इतनी गन्दी

हो गयी है कि बड़े-बड़े सत्पुरुषोंका व्यवहार भी पूर्णत: शुद्ध नहीं होता। जहाँ दूसरोंसे सम्बन्ध रखना पड़ता है, वहाँ कुछ-न-कुछ उनके सम्बन्धका ध्यान रखना ही पड़ता है। इसलिये कैसा भी सज्जन क्यों न हो,

व्यवहारके क्षेत्रमें उसे विवश होकर अपराध करना पड़ सकता है। अवश्य ही यह व्यापारका दोष नहीं है, किंतु कलियुगमें ऐसे व्यक्तियोंकी ही भरमार है। इसीसे जो लोग अपने ईमान और सच्चाईकी रक्षा करना चाहते हैं, अपने अन्त:करणको शुद्ध रखना चाहते हैं, वे थोड़े-से-

थोड़ा व्यापार करते हैं अथवा उससे बिलकुल अलग

#### पूर्ण गोहत्या-बन्दीकी दिशामें महाराष्ट्रका एक कदम

गोहत्या पूर्णरूपसे बन्द हो गयी, साथ ही गोवंशके संरक्षण-सम्वर्धनहेत् ५००० एकड भूमि चिह्नितकर एक विशेष प्राधिकरण स्थापित करनेका भी प्रस्ताव है। लगभग १९

इधर एक शुभ समाचार प्राप्त हुआ है कि महाराष्ट्रमें

वर्षपूर्व महाराष्ट्र विधानसभामें पूर्ण गोहत्या-बन्दीका प्रस्ताव

पारित हुआ था, जिसपर अबतक राष्ट्रपतिके हस्ताक्षर न

होनेके कारण वह पेंडिंग पडा था। कुछ लोगोंके प्रयत्नसे

अब माननीय राष्ट्रपति महोदयने उसपर अपनी स्वीकृतिके

हस्ताक्षर कर दिये हैं और यह कानून महाराष्ट्रमें लागू हो गया है। अब प्रदेशमें गोहत्या करनेवालेको अधिकतम दस

वर्षके सश्रम कारावासकी सजा होगी। महाराष्ट्रकी जनता, वहाँकी सरकार और हमारे माननीय राष्ट्रपति इसके लिये

बधाईके पात्र हैं। अभी-अभी समाचार मिला है कि हरियाणा विधानसभाने भी पूर्ण गोहत्या-बन्दीका प्रस्ताव पारित किया

है, यह शुभ संकेत है। भारत स्वतन्त्र होनेके बादसे इस शताब्दीके जिन सन्त-

महात्मा, मनीषी और आध्यात्मिक पुरुषोंने भारत-भूमिमें जन्म लिया, उन सबने एक स्वरसे कहा कि भारत-जैसे पवित्र देशमें गोरक्त गिरना, इस देश और इस देशकी संस्कृतिके

लिये एक महान् कलंककी बात है। महात्मा गांधी, संत

विनोबा भावे, ब्रह्मलीन स्वामी करपात्रीजी, माँ आनन्दमयी, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी आदि संत-महापुरुषोंने जीवनपर्यन्त

गोवधका विरोध किया तथा सत्याग्रह-आन्दोलन भी किये। यद्यपि कुछ प्रदेश-सरकारोंने आंशिक रूपसे गोहत्या-

बन्दीके प्रस्ताव पारित भी कर रखे हैं, परंतु वे कानून एक तो अधूरे हैं तथा जो बने हैं - उनका भी कार्यान्वयन पूरी

तरह नहीं होता। भारतमें जितने प्रदेश हैं, उनमें गोहत्याके सन्दर्भमें निम्न स्थिति प्रतीत होती है-(१) उत्तरपूर्वी प्रदेशोंमें मेघालय, अरुणाचल प्रदेश,

मणिपुर, सिक्किम, नागालैण्ड आदिमें गोहत्याकी खुली छूट है अर्थात् किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं है।

केवल केविएट अर्थात् पूर्व सूचनाका प्रावधान है।

(३) तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और असम आदि

अनुमति प्राप्त हो जाती है।

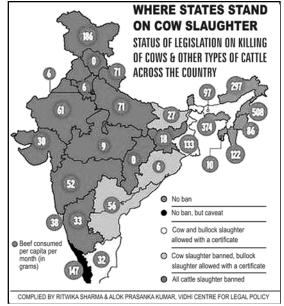
(४) आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना, बिहार, गोवा और उडीसा

आदि प्रदेशोंमें यद्यपि गोहत्यापर कहनेके लिये प्रतिबन्ध तो

इसके अतिरिक्त कुछ प्रदेशोंमें गोहत्या-बन्दीके कानून

है, पर यह आंशिक है, कारण बैल, साँड आदि अन्य गोवंशकी सर्टिफिकेटके आधारपर हत्याकी अनुमति प्राप्त हो जाती है।

पारित हैं। निम्न चित्रमें उपर्युक्त तथ्योंको दर्शाया गया है— WHERE STATES STAND ON COW SLAUGHTER STATUS OF LEGISLATION ON KILLING OF COWS & OTHER TYPES OF CATTLE ACROSS THE COUNTRY



उपर्युक्त स्थितिको देखते हुए यह बात समझमें आती

है कि गोहत्या-बन्दीके एक सुदृढ़ केन्द्रीय कानूनको बनाये बिना सम्पूर्ण भारतसे गोहत्याका कलंक मिट नहीं सकता। यद्यपि तत्कालमें केन्द्रीय कानून बनानेमें कुछ संवैधानिक

अड्चनें हो सकती हैं, परंतु वर्तमान सरकारको कटिबद्ध

होकर अड्चनोंको दूर करनेका प्रयत्न करते हुए पूर्ण गोहत्या-

बन्दीका एक सुदृढ़ केन्द्रीय कानून बनानेका दृढ़ निश्चय कर

लेना चाहिये, तभी भारतमें गोहत्याका यह कलंक मिट सकेगा। भगवत्कुपासे वर्तमान सरकारको यह सामर्थ्य प्राप्त

है कि वह दुढ निश्चयकर कटिबद्ध होकर इस कार्यको

(२) केरलमें गोहत्या-बन्दीका कोई कानून नहीं है, सम्पन्न कर सकती है। परमात्मप्रभुसे प्रार्थना है कि भारतके कर्णधारोंको सद्बृद्धि, सामर्थ्य और शक्ति प्रदान

करें, जिससे यह शुभ कार्य यथाशीघ्र सम्पन्न हो सके। प्रदेशों में Unitation Amage ( Made With Love By The Transport of the Property of the Propert

	गीनारेससे ए	ക്വര	ात १	७ महापुराण	
	K PARIMIP	प्रमार	111 5	७ महायुराण	
कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
1897 )	<b>श्रीमद्देवीभागवत महापुराण</b> (मतान्तरसे) सटीव	<del>Б</del>	789	<b>संक्षिप्त श्रीशिवपुराण</b> —मोटा टाइप	२००
1898	,, ,, ,, ,, ,, ,,	800	44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०
26,27	श्रीमद्भागवत-महापुराण "	400	1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण	२००
557	श्रीमत्स्यमहापुराण "	२७०	279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण	३२५
48	श्रीविष्णुपुराण "	१४०	1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०
1432	श्रीवामनपुराण "	१२५	539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण	९०
1131	श्रीकूर्मपुराण "	१४०	1189	संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण	१६०
1932	श्रीलिङ्गमहापुराण	२००	1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण	१००
	—— केवल हिन्दीमें ——		631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण	२००
1362	<b>श्रीअग्निपुराण</b> —सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित)	२००	584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण	१५०
नोट –	- गीताप्रेससे प्रकाशित संक्षिप्त पुराण स	 ग्प्यूर्ण पु	राणके हि	इन्दी भाषामें भावानुवाद हैं। केवल कुछ	विस्तृत

# ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय (सेठजी) श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कछ

प्रसंगोंको संक्षिप्त किया गया हो सकता है। १८ में ब्रह्माण्डप्राण गीताप्रेससे नहीं छपा है।

## लोककल्याणकारी पत्रोंके संग्रह

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके द्वारा अपने परिचितों. मित्रों एवं अन्य लोगोंके लौकिक तथा पारलौकिक समस्याके समाधानके लिये लिखे गये इन पत्रोंके संग्रहमें ज्ञान, भिक्त, वैराग्य, चेतावनी, भजन, सत्संग, सेवा आदिकी महत्ताका प्रतिपादन, संसारकी नश्वरता, आत्मज्ञान आदि अनेक कल्याणकारी विषयोंका सन्दर विवेचन है। ये पत्र कर्तव्य-कर्म एवं परमार्थमार्गका ज्ञान करानेमें सच्चे सहायक हैं।

	3 .	•		,	
कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
277	उद्धार कैसे हो? (५१ पत्रोंका संग्रह)	१०	281	शिक्षाप्रद पत्र (७० पत्रोंका संग्रह)	१५
278	सच्ची सलाह (८० पत्रोंका संग्रह)	१२	282	<b>पारमार्थिक पत्र</b> (९१ पत्रोंका संग्रह)	१५
280				अध्यात्मविषयक पत्र (५४ पत्रोंका संग्रह)	१२

#### नित्यलीलालीन ( भाईजी ) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके कुछ महत्त्वपूर्ण पत्रोंके संग्रह

श्रद्धेय भाईजीके द्वारा अपने परिचितों तथा मित्रोंको लिखे गये इन पत्रोंके संग्रहमें व्यावहारिक परिष्कार, कर्तव्य, साधन, जप, ध्यान, साधनात्मक समाधान, नाम-निष्ठा, सेवाका रहस्य, दु:खकी निवृत्तिका उपाय, पाप-पुण्यकी परिभाषा आदि विभिन्न विषयोंकी मुख्य लाखा है।

नारमाना जापि विभिन्न विभवविम संस्ति ज्याख्या है।					
कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
353	<b>लोक-परलोक-सुधार—</b> (६८ पत्रोंका संग्रह)	२०	356	शान्ति कैसे मिले?—९४ पत्रोंका संग्रह	२५
354	<b>आनन्दका स्वरूप</b> —६५ पत्रोंका संग्रह	२०	357	दुःख क्यों होते हैं?—८५ पत्रोंका संग्रह	२५
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर—९३ पत्रोंका संग्रह	३०			

अगर किसी पाठकको आध्यात्मिक जिज्ञासा है तो वह इमेल gita.kalyan@yahoo.in पर सम्पर्क कर सकते हैं। कल्याण मासिक पत्रकी सदस्यतासे सम्बन्धित पत्राचार इ-मेल kalyan@gitapress.org पर करें।



प्र० ति० २०-३-२०१५

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

#### कल्याण' के ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

'कल्याण' वर्ष ८९ (जनवरी २०१५) का विशेषाङ्क—'सेवा-अङ्क' हेतु जिन ग्राहकोंसे सदस्यता-शुल्क

प्राप्त हुआ उन सभीको उक्त अङ्क रजिस्टर्ड डाकसे प्रेषित किया गया है। जिनका सदस्यता-शुल्क समयपर प्राप्त नहीं हो सका उन्हें वी०पी०पी०से विशेषाङ्क प्रेषित किया गया है। यदि किसीको भी अभीतक विशेषाङ्क

प्राप्त नहीं हो पाया है तो उन्हें अपने डाकघरमें जाकर पता लगाना चाहिये। जिन ग्राहकोंको बिना वी०पी०पी० छुड़ाये फरवरी माहका अङ्क प्राप्त हो गया है उनसे निवेदन है कि सदस्यता जारी रखने हेतु सदस्यता-शुल्क

शीघ्र भेजना चाहिये। सूचना देकर पून: वी०पी०से भी मँगाया जा सकता है।

व्यवस्थापक-कल्याण कार्यालय, गीताप्रेस-२७३००५ (गोरखपुर) (उ० प्र०)

अप्रैल २०१४ से मार्च २०१५ तक प्रकाशित नवीन प्रकाशन मूल्य ₹ मूल्य ₹ कोड कोड कोड पुस्तक-नाम पुस्तक-नाम पुस्तक-नाम मूल्य ₹

आदर्श देशभक्त-चित्रकथा आदर्श-ऋषि-मृनि-2019 1986 – तेलुगु 24 ग्रन्थाकार, रंगीन आदर्श सम्राट् लक्ष्मीसहस्त्रनाम 2022 1754 २५ २५ 1992 हिन्दी-अंग्रेजी वर्णमाला आदर्श संत एक लोटा पानी 30 2026 २५ 985 २०

आदर्श सुधारक सचित्र श्रीदुर्गाचालीसा एवं 2028 २५ १०

**गीता हिन्दी-संस्कृत-**पाकेट विन्ध्येश्वरीचालीसा (वि०सं०) 2025 १५ 1985 **लिंगमहापुराण**—सटीक श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर 34

2024 200 श्रीपुरुषोत्तमसहस्त्रनामस्तोत्रम् भगवत्प्राप्तिकी अमुल्य बातें 2021 १० 2027

शिवमहापुराण मूलमात्रम् 240 आध्यात्मिक कहानियाँ 2020 2002

शक्तिपीठ-दर्शन ज्योतिषतत्त्वाङ्क 1980 १३० 2003 भक्तमाल-अङ्क **विदुरनीति**—अंग्रेजी 1947 १३० 2001

श्रीदुर्गाचालीसा एवं — मराठी -1991 विन्ध्येश्वरीचालीमा श्रीरामविजय 1983

लाल रंगमें (विशिष्ट सं०) -गुजराती **हन्मानचालीसा**—सचित्र अच्छे बनो 1979 1987 कल्याण कैसे हो?

(विशिष्ट संस्करण) १० 1988 **,, सचित्र** (खडिआ,लघु) 2023 1997

(विशिष्ट संस्करण) 4 भगवन्नाम माहात्म्य 1990

१० 1984 भजगोविन्दम्

भजनोंका यह संग्रह सबके लिये उपयोगी है। मृल्य ₹६०

तथा श्रीहनुमानजीके भजन दिये गये हैं। प्रत्येक देवताके भजनके प्रारम्भमें संस्कृतमें उनके स्तोत्र भी संग्रहीत हैं। विभिन्न रागोंमें निबद्ध प्राचीन एवं अर्वाचीन संतों तथा मारवाड़ी भाषाके विभिन्न

भजन-सुधा (पुस्तकाकार) सजिल्द (कोड 1783)—प्रस्तुत पुस्तक ४१९ भजनोंका अनुपम संग्रह है। इसमें गणेश, शिव, भगवान् विष्णु, भगवान् राम, श्रीकृष्ण, देवीके विभिन्न-भजन

जीवनचर्या-विज्ञान

- असमिया

अष्टादशशक्ति

विदुरनीति

पीठाल महिमा

**श्रीदुर्गासप्तशती** — सटीक

कठोपनिषद् शांकरभाष्य

— कन्नड्

- तमिल

- बँगला

श्रीमद्देवीभागवतपुराण

शिवमहिम्नस्तोत्र

ललितासहस्त्रनाम

विदुरनीति

स्तुति

१५

१५

80

30

200

१२

१२

१२५

1995

986

987

990

1989

1994

1998

1999

1996

१२

२०

२०

२०

१००

१५

80